श्रीराजेन्द्रप्रवचनकार्यालय-सिरीज-४७

आचार्यदेवेश श्री श्री १००८ भट्टारक-श्रीमद्-
श्रीविजययतीन्द्रसूरीश्वरजी महाराज-
प्रसादीकृत—

श्रीसमाधान-प्रदीप-हिन्दी।

पृच्छक-जिज्ञासुओं के पूछे हुए प्रश्नों के
सप्रमाण-उत्तरों से समलङ्कृत।

प्रकाशक—
सत्तावत-कनौजियाराठौर-बीसा-पोरवाड़-
शा० नाथाजी लूम्बाजी सुपुत्र-भगवानजी
मु० सियाणा (मारवाड़)

श्रीवीरनिर्वाणाब्द २४६९ } प्रथम { विक्रमाब्द २०००
श्रीराजेन्द्रसूरि-संवत् ३७ } संस्करण { सन् १९४३ इस्वी

सर्वसाधारण के लिये मूल्य १)

मुद्रक—शाह गुलाबचंद लल्लुभाइ-श्री महोदय प्रिन्टींग प्रेस
दाणापीठ—भावनगर।

पृच्छक–जिज्ञासु।

प्रश्नकारक–	प्रश्न-नम्बर
१ सेठ कस्तुरचन्दजी वरधीचन्द्र पोरवाड़ जैन, मु० त्रिचीनोपोली (मद्रास)	१–९५
२ मुनिसत्तम श्रीहर्षविजयजी,मु०थराद(उत्तर गुजरात)	९६ १०१
३ मेहता भेरुसिंह बी ए , मु० सितामऊ (मालवा)	१०२–१०३
४ कुन्दनमल डागी, मु० निम्बाहेड़ा (टोंक)	१०४–१११
५ एस् एम् जैन, मु० वमन्या (मालवा)	११२–११८
६ ऊकचदजैन, मु० मेंगलवा (मारवाड़)	११९–१३२
७ मुनि श्रीवल्लभविजयजी, मु० जावरा (मालवा)	१३३–१४१
८ ताराचद मेघराजजी, मु० पावा (मारवाड़)	१४२
९ सिरेमलजी गुरा, मु० सायला (मारवाड)	१४३–१४४
१० चुन्नीलाल खीमजी कारसिया,मु०वेड़ा (मारवाड़)	१४५–१७५
११ मुनि न्यायविजयजी, मु० उज्जैन (मालवा)	१७६–१९१
१२ श्रीराजेन्द्रोदयजैनयुवकमडल,मु०जावरा (मालवा)	१९२-२०१
१३ सौभाग्यमल कोठारी, मु० लश्कर (ग्वालियर)	२०२–२०५
१४ एच् एस् पोरवाड़ जैन, मु० कुक्शी (नेमाड़)	२०६–२१२

विश्वपूज्य प्रातःस्मरणीय
प्रभुश्रीमद्विजयराजेन्द्रसूरीश्वरजी महाराज ।

आमुख
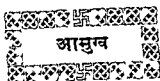
'पडिपुच्छणयाए णं भंते! जीवे किं जणयइ?, पडिपुच्छणयाए णं सुत्तत्थतदुभयाइं विसोहेइ, कंखामोहणिज्जं कम्मं वोच्छिंदइ २०।' व्याख्या-हेस्वामिन्! प्रतिपृच्छनया पूर्वाधीतस्य सूत्रादेः पुनः पृच्छनेन जीवः किं जनयति? । गुरुराह-हेशिष्य! प्रतिपृच्छनया सूत्रार्थतदुभयानि विशोधयति-सूत्रार्थयोः संशयं निवार्य निर्मलत्वं विधत्ते, तथा कांक्षामोहनीयं कर्म व्युच्छिनत्ति । कांक्षाशब्देन सन्देहः, कांक्षया सन्देहेन मोहनं कांक्षामोहनं तत्र भवं कांक्षामोहनीयं । एतत्कर्म विशेषेणापनयति । इदमित्थं तत्त्वम्-अथ नेदमित्थं नास्ति वेदं ममाध्ययनाय योग्यमयोग्यं नेत्यादिघटना कांक्षा वाञ्छा तद्रूपमेव मोहनीयं कर्माऽनभिग्रहिकमिथ्यात्वरूपं तद्विनाशयतीति । उत्तराध्ययनसूत्र, २९ वां अध्ययन, लक्ष्मीवल्लभीटीका जामनगर में मुद्रित ९८९ पृष्ठ।

अर्थ-श्री जम्बूस्वामी पंचम गणधर-श्रीसुधर्मस्वामी से पूछते हैं कि-भगवन्! अभ्यस्त सूत्र आदि में उत्थित संशयों को बार-बार पूछने से जीव को क्या लाभ होता है? । गुरु कहते हैं कि-जम्बू! प्रतिपृच्छना से सूत्र, अर्थ इन दोनों का संशय मिट कर निर्मलता प्राप्त होती है और यह सूत्र अच्छा या वह?, यह अर्थ अच्छा या वह? और अपने सिद्धान्त ठीक हैं या अन्य मत के? इत्यादि प्रकार के संकल्पविकल्पों का सर्व-नाश होता है।

तात्पर्य यह है कि-अभ्यस्त सूत्र, ग्रन्थ उनके अर्थ और ज्ञात विषयों में संशय पैदा होने पर उनको आगमज्ञ आचार्य आदि विद्वानों से बार-बार पूछ कर निर्णय प्राप्त कर लेने से वास्तविक सत्यता का

पता लगता है सूत्राथ म द्द विश्वास जमता है किसी प्रकार के सकप विकल्प नहीं उठन पात, परमताभिलाषा नष्ट हो कर स्वधम पर मजबूत श्रद्धा होती है और सूत्रार्थ के असली रहस्य का विशिष्ट ज्ञान होता है।

'उत्तरदान विना हृदयस्थितसशयेभ्यस्तत्साशयिकसज्ञ मिथ्यात्व भवति-विपरीतबोधरूप भवति सशयालूनामिति। अत्रायमाशय'-यदि गुरव सम्यगुत्तर न दद्युस्तदा मान्द्यतस्ते सन्देहा गुणाधिकमपि प्राणिन पातयन्त्येव यावन्मिथ्यात्व नयन्तीति।' म देहदोलावलीवृत्ति।

—उत्तर-दान क विना हृदय में रहे हुए सन्देहों के कारण सशयालु-प्राणियों को साशयिकमिथ्यात्व (विपरीतबोध) होता है। अथात्-सशयालुओं क प्रश्नों का यदि गुरु योग्य उत्तर नहीं देवें तो वे सशय गुणाधिक प्राणि को भी पतित करत हु-मिथ्यात्व (विपरीत श्रद्धा) म ल जात हैं।

कहन का मतलब यह है कि—सशयालुओं के प्रश्नों का योग्य खुलासा न मिलने पर मतिमन्दता से वे मिथ्याभाव (विपरीत-बोध) का आश्रय ले कर अपनी आत्मा को भव-भ्रमण के गत्त (खड्डे) में पटक देते हैं और वास्तविक सत्य स वंचित रह जात हैं। कहा भी है कि—

सुर नर तिरि जग जो नमें नरक निगोद भम त।
महामोह की नीन्दसो, सोये काल अनन्त ॥ १ ॥

—देव मनुष्य पशु पक्षी और सारा ससार जिन विशिष्ट गुण सम्पन्न पुरुषों को नमस्कार करता है वे भी सशयप्रमाद रूप महामोह की नीन्द से नरक और निगोद में भ्रमण करते हैं और वहाँ अनन्त काल पर्यन्त सोते रहते हं। आगमकार भी कहत हैं कि—

सुअकेवली आहारग, उज्जुमई उवसतगा वि उ पमाया।
हिंडति भवमणत, तयाणतरमेव चउगइया ॥ १ ॥

—श्रुतकेवली (चौदह पूर्वधारी), आहारकशरीरी, ऋजुमति-मन पयव

ानी, तथा अप्रमत्तमोह गुणस्थानी ये चारों प्रमादयोग (संशयमोहनीय) से उस भव के अनन्तर चतुर्गति समापन्न हो अनन्त भव भ्रमण करते हैं।

यदि पृच्छयन्ते तदा को गुण ?, इत्यत आह-'निस्सदेहाण होइ सम्मत्त' निस्सन्देहानाम्-अपगतसंशयानां भवति सम्यक्त्व-तत्त्वश्रद्धानम्। (सन्देहदोलावली-बृहद्वृत्ती)

—यदि उत्पन्न संशयों को आचार्यादि से पूछ कर निर्णय कर लिये जायें तो क्या गुण होता है ? । उत्तर—संशयों के मिट जाने से तत्त्व श्रद्धान रूप सम्यक्त्व का लाभ होता है और उससे संसार-भ्रमण मिटता है। जिस पुरुष को सन्देह रहित सम्यक्त्व-लाभ होता है वह बहुत काल तक चतुर्गति रूप संसार में भ्रमण नहीं करता, वह अति स्वल्प काल में निष्कर्म अवस्था को प्राप्त कर लेता है। कहा भी है कि—

"नाण वढ्इ संसो टलइ, विकल्प कोपि न होइ।
नमइ निभ्रांम धर्ममा, पृच्छनमा गुण जोइ ॥ १ ॥"

"द्वेष मान आमर्श से, शंकाच्छादित अन्ध।
न पूछे कभी विज्ञ से, ताहि जान मतिमन्द ॥ १ ॥"

—मनुष्य चाहे विद्वान् हो या मूर्ख तत्वज्ञ हो या अतत्वज्ञ और चतुर हो या अचतुर जब तक वह छद्मावस्था में है तब तक उसके हृदय में संशयों का उत्पन्न होना स्वाभाविक है। संसार में संशयों को निर्मूल करने के लिये दो मार्ग हैं-एक शास्त्र और दूसरा आगमज्ञ-गुरु। जो सदाशयालु विद्वान् या तत्वज्ञ है वह शास्त्रों को बांच कर अपने उत्थित संशयों का समाधान कर सकता है अथवा अपने से विशेष ज्ञाता से पूछ कर निःसन्देह हो सकता है।

जो सदाशयालु शास्त्रों से अनभिज्ञ हैं वे सदाचारी आगमरहस्यज्ञ-आचार्य आदि गुरुवरों से पूछ कर उत्थित संशयों का निराकरण कर सकते हैं। इन दो मार्गों के सिवा संशयों को मिटाने का तीसरा मार्ग कोई नहीं है।

इसी वस्तुस्थिति को भलीभांति लक्ष्य में रख कर पूर्वकाल में इस विषय के समर्थक प्रश्नोत्तर रूप से स्थानाङ्ग, समवायाङ्ग भगवति, प्रज्ञापनोपाङ्ग जीवाभिगम आदि आगम-सूत्र और विचाररत्नाकर विचारामृतसार सग्रह प्रश्नोत्तरसार्धशतक हीरप्रश्न, सेनप्रश्न प्रश्नोत्तररत्नाकर सन्देहदोलावली, विशेषशतक आदि अनेक ग्रन्थों का निर्माण हुआ और वर्तमान में हो रहा है। इस प्रकार के आगम और ग्रन्थ विविध विषयों की शिक्षणीय सामग्री के पोषक समर्थक और प्रबोधक होते हैं। अत उनके वाचन, मनन एव श्रवण करने से अनेक बातों का ज्ञान प्राप्त होता है। प्रस्तुत ग्रन्थ भी इसी वस्तु-स्थिति का द्योतक समझना चाहिये शमिति।

सियाणा (मारवाड)
ता ११।८।४३

—श्रीविजययतीन्द्रसूरि।

ॐ अर्हम्
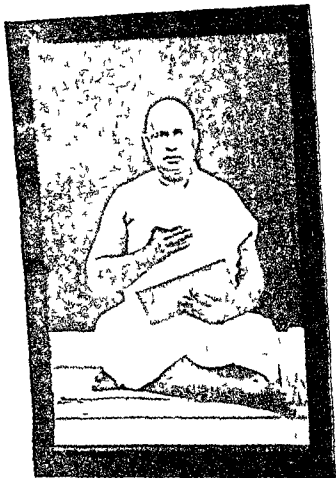
श्रीमद्विजययती न्द्रसूरीश्वरजी महाराज

भूमिका

जो करने योग्य कार्य को विवेक से किया जाता है वह कर्म है। सविवेक से किये जाने वाले कर्म सब स-हित होते हैं। इसलिये कर्म साहित्य वही है जो हितपूर्णभाव हो। 'साहित्य' सहित शब्द से बनता है, सहित का अर्थ है ' हितेन सहित ' हित-युक्त। अत. साहित्य का अर्थ वही है जो कर्म की व्याख्या है। कर्म वही है जो साहित्य हितपूर्णभाव हो और साहित्य (पुस्तकादि-पर्याय) वही है जो कर्म (हितपूर्ण-भाव) हो। अर्थात्-जो कर्म की रूप-रेखा मे आता हो वही साहित्य है।

ससार मे जितने कर्म हुए हैं या हो रहे हैं उन सब की उत्पत्ति सद्भावनाओं में ही हुई है। लोक-कल्याण की शुभ कामना ही यहाँ आलम्बन है। यह होता है, होता आया है और भविष्य मे भी होता रहेगा कि-देश काल स्थिति से कर्म विरूप, परिवर्त्तित तथा कृत्रिम बन जाते हैं, यह बात अलग है। इमसे कर्म के कलेवर मे कोई अन्तर नहीं आ जाता।

र्म तो प्रकृत ही रहता है। रात्रि का भाव दिन की शोभा-वृद्धि का कारण है। रात्रि के उद्भूत होने से दिन की शोभा अधिक ही बढती है, न्यून नहीं होती। पाप पुण्य को पावन, प्रिय, सराहनीय एवं कीर्तियुक्त ही उद्घोषित करता है—पुण्य को इस पद तक पहुचाता है।

शुक्लपक्ष की महिमा न होती तो कृष्णपक्ष का भाव न होता। अगर रात्रि दिवस का, पाप पुण्य का और कृष्णपक्ष शुक्लपक्ष का स्थान ग्रहण कर ले तो अनर्थ हो जाता है। जब जब इस जगत मे ऐसा हुआ या होने लगा, तब तब इस अनर्थ को हटाने के लिये क्रान्तियें हुईं, कोटि प्रयत्न किये गये, अगणित उपाय शोधे गये, ग्रन्थकारोंने ग्रन्थ लिखे, वीरोंने रण किये और भूपालोंने शस्त्र उठाये। श्रीऋषभदेवप्रभु के राज्य–भार ग्रहण करने का मूल कारण यही था कि संसार में विकार उत्पन्न होने लग गये थे। रावण के अत्याचारों से पृथ्वी आक्रान्त हो उठी थी, उसीके कारण राम का अवतार माना गया। स्मृति ग्रन्थों का लिखा जाना भी लोककल्याण के लिये ही एक उपाय था। धर्म एक उपाय है और उपाय सलक्ष्य ही होता है। लक्ष्य और उपाय का देह–आत्मा का सम्बन्ध है।

इस उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि–ऐसा दल जो वयुक्त है और बहुसंख्यक है इस समय पैदा हो गया है, जो धर्मकर्म के प्रति अधिक उदासीन है, धर्मकर्म को विभिन्न, भ्रम, एवं शङ्कापूर्ण दृष्टियों से देख रहा है, धर्मकर्म के मर्म को

न समझ रहा है, व्यर्थ की शङ्काओं एवं भ्रमों में पड कर अपना अहित कर रहा है और उसने 'समाधान-प्रदीप' का जन्म अनिवार्य बनाया है। अत समाधान-प्रदीप साहित्य की एक अनमोल वस्तु है।

आचार्यदेवेश श्री श्री १००८ श्रीमद् विजययतीन्द्रसूरीश्वरजी महाराजने अनेक विषयों को इस ग्रन्थ में स्पष्ट किया है, हरएक विषय को शास्त्रीय प्रमाणों से अलङ्कृत किया है, उनके वास्तविक मर्म को खोला है और प्रश्नोत्तर के तारतम्य से वे अधिक स्पष्ट, सुबोध और सरल बन गये हैं। साधारण मानव का प्रवेश उसमें अति सुगम बन गया है। व्यावहारिक और धार्मिक भाव इस ग्रन्थ मे अच्छी स्थिति पा गया है। प्रत्येक व्यक्ति के लिये यह ग्रन्थ पाठ्य और उपादेय है। इसने प्राय आशा से अधिक शङ्कास्पद ग्रन्थियों को सुलझा कर, उन्हें अवलोक-नीय और मननीय वस्तु बना दिया है।

अन्त मे इतना और लिख कर विराम लेता हू कि—आचार्य-देवेशने इसमे अनेक विषयों को उस सीमा तक स्पष्ट किया है जो इस युग से मेल खाती हैं और युग के अनुकूल प्रतीत होती हैं। यह युग की छाप भी मानी जा सकती है। जेनधर्म के मूल सिद्धान्तों में बिना हेर-फेर किये यह सब किया गया है यही इस ग्रन्थ की विशेषता है। पाठक पढ कर इसका अनुभव कर सकेंगे और यह ग्रन्थ उन्हें अवश्य लाभान्वित करेगा।

सियाणा (मारवाड़) निवासी वृद्धशाखा-प्राग्वाटज्ञातीय परमश्रद्धालु शा० भगवानजी लूबाजी मत्तावत-जैनने सर्वसाधारण जनता में लाभ पहुचाने के लिये इस अमूल्य ग्रन्थ-रत्न को छपा कर प्रकाशित किया है, अत इस ज्ञानप्रचार के लिये हम उनको हार्दिक धन्यवाद देते हैं। जिन जिज्ञासु महानुभावों को इस ग्रन्थ की आवश्यकता हो उन्हें प्रकाशक से पोस्ट द्वारा मूल्य भेज कर, या वी पी से मगा लेना चाहिये और भेट में मगाने वालों को पोस्टपेकिंग खर्च भेज कर ही मगाना चाहिये। इमिति।

सियाणा (मारवाड़)
ता ५-९-४३

मुनि-विद्याविजयजी।

पुस्तक-प्राप्ति-स्थान—

१ मत्तावत-शा० भगवान लूबाजी जैन।
मु० पो० सियाणा (मारवाड़) वाया-सिरोही

२ श्रीराजेन्द्रप्रवचनकार्यालय।
मु० खुडाला, पो० फालना (मारवाड़)

मत्तानत शा. भगवान लूबाजी पोरवाड़ जैन
मु० सियाणा (मारवाड)
जन्म स १९४० श्रावण वद्दि ११

श्री महोदय प्रेस–भावनगर

सियाणा (मारवाड़) निवासी वृद्धशाखा–प्राग्वाटज्ञातीय परमश्रद्धालु शा० भगवानजी लूनाजी सत्तावत–जैनने सर्वसाधारण जनता मे लाभ पहुचाने के लिये इस अमूल्य ग्रन्थ–रत्न को छपा कर प्रकाशित किया है, अत इस ज्ञानप्रचार के लिये हम उनको हार्दिक धन्यवाद देते हैं। जिन जिज्ञासु महानुभावों को इस ग्रन्थ की आवश्यकता हो उन्हें प्रकाशक से पोस्ट द्वारा मूल्य भेज कर, या वी पी से मगा लेना चाहिये और भेट मे मगाने वालों को पोस्टपेस्टिंग खर्च भेज कर ही मगाना चाहिये। शमिति।

सियाणा (मारवाड)
ता ५–९–४३

मुनि–विद्याविजयजी।

पुस्तक–प्राप्ति–स्थान—

१ सत्तावत–शा० भगवान लूनाजी जैन।
मु० पो० सियाणा (मारवाड) वाया–सिरोही

२ श्रीराजेन्द्रप्रवचनकार्यालय।
मु० खुडाला, पो० फालना (मारवाड)

मत्तानत शा. भगवान लूनानी पोरवाड़ जैन
मु० सियाणा (मारवाड़)
जन्म स १९४० श्रावण वदि ११

श्री महोदय प्रेस-भावनगर

ॐ श्रीवर्धमानस्वामीभ्यो नम ।

समाधान-प्रदीप-हिन्दी ।
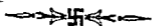
शान्तिनाथं प्रभु शान्तिद, बुद्धिद,
श्रीगुरुं भक्तितोऽहं प्रणामं तथा ।
पृच्छकाना समाधानबुद्धिप्रद,
बालभाषा समालम्ब्य कुर्वे ह्यमुम् ॥ १ ॥

समाधान-प्रदीपाख्य, ग्रन्थं सद्ग्रन्थमन्थनम् ।
सपादयामि शान्ताना, विदुषा स्वान्तकान्तिदम् ॥ २ ॥

प्रश्नकार—के. वरधीचन्द्रजैन, मु० त्रिचीनोपोली ।

१ प्रश्न—धर्मोपदेश के लिये साधु मोटर, बोट, रेल्वे, नौका में बैठ कर दूर देशों मे जावे तो क्या हर्ज है ? ।

उत्तर—जो आचरण कचन, कामिनी, हिंसा, आदि का प्रसग करानेवाला है, जिसमें निमित्त-जन्य दोषों की सम्भावना, पराधीनता और आज्ञा-भग का भय उपस्थित है, वह मार्ग शास्त्र-सम्मत नहीं है । इस सिद्धान्त के अनुसार मोटर, बोट, रेल्वे, हवाईजहाज, नौका, गाड़ी, आदि में बैठनेवालों को षट् जीवनिकाय की विराधना, कचन-कामिनी का प्रसग,

आर्त्त-रौद्र और पराधीनता आदि दोष लगना स्वाभाविक है। तथा मोटर आदि वाहन व्यापार और तज्जन्य लाभ-प्राप्ति के साधन हैं। जो भाड़ा देगा वही उनमें बैठ सकेगा। कहीं बैठानेवाला मिलेगा कहीं नहीं, कहीं आहार-पानी का योग मिलेगा कहीं नहीं और कहीं बिना टिकीट के चोरी से बैठना पड़ेगा-जिसमें तिरस्कार एव कलह-कषाय की झझट उपस्थित होगी। ऐसी परिस्थिति में सयम धर्म की रक्षा होना भी कठिन है। खुद के सयमधर्म का नाश करके दूसरों को सुधारना यह अनुचित है। जो स्वय पतित या शिथिलाचार-प्रिय है, वह दूसरों का सुधारा कभी नहीं कर सकता। भला अपने मकान को जलने देना और दूसरों के मकान की रक्षा करना क्या यह नीति है या नीतिभग ?। इसीसे शास्त्रकारोंने साधुओं को वाहन में बैठने की आज्ञा नहीं दी जो न्याय-सगत ही है।

नौका मे बैठने की आज्ञा भी उसी हालत में दी गई है कि निकट पाच, दश या बीश कोश के फासले पर पैदल जाने का मार्ग न हो, नौकावाला भक्ति-प्रेम से बिना कुछ लिये बैठावे और नौका-स्थित जनता को साधु के बैठने से किसी तरह का इतराज न हो। अगर इससे विपरीत मामला (प्रसग) उपस्थित हो तो नौका में भी बैठने की आज्ञा नहीं है। हर तरह से सयम-धर्म की रक्षा करते हुए पैदल विहार हो सके वहाँ तक ही धर्मोपदेश के लिये जाना चाहिये। उक्ति भी है कि 'आत्मार्थे सर्वं त्यजेत्' आत्मधर्म को बाधा पहुचती हो तो

दूसरी बातों की तनिक भी अभिलाषा न रख कर आत्मधर्म को सुरक्षित रखना अच्छा है।

पूर्व समय मे रास्ते के गाँवों मे हर जगह अनुकूलता थी, इससे साधुओं को किसी तरह की तकलीफ नहीं पड़ती थी। जब से उस अनुकूलता का अभाव हो गया और लम्बे विहारों से सयमधर्म में बाधा आने लगी, तब से दूर देशों मे विहार करना बन्द हो गया। समाज या धर्म का उदयास्त अथवा हानि-वृद्धि होना स्वाभाविक है। उसका भार किसी व्यक्ति-विशेष पर अवलम्बित नहीं है। समाज एव धर्म का कभी उदय कभी अस्त होता ही आया है और होता ही रहेगा, उसके लिये सयमधर्म का नाश कर डालना अच्छा नहीं है। जब जैनागम पचमकाल की स्थिति २१ हजार वर्ष से अधिक नहीं बताते और अन्त मे १ साधु, १ साध्वी, १ श्रावक तथा १ श्राविका से सघ का अस्तित्व कहते हैं, तब हजार या लाख गुणी वृद्धि करने पर भी क्या शास्त्र-कथन कभी निष्फल हो सकता है ?। अतएव उन्नति-अवनति को लक्ष्य मे रख कर सयमधर्म को बाधा न हो उस ढग से स्व-पर को समुन्नत बनाने का यथासाध्य प्रयत्न करना हितावह है।

समय विषम है, उसका सारा वातावरण पलटा कभी खा नहीं सकता। जैनों मे प्रतिदिन जैनत्व का ह्रास (नाश) होता जा रहा है उनमे स्वधर्मियों को सहाय देने के बजाय अपमानित करने का

घोलवाला है। सभी लीडर बनना और एक दूसरों को गिराना चाहते हैं। जब तक इस परिस्थिति का परिवर्त्तन नहीं हो जाय तब तक सुधार या समाज–वृद्धि होना दुराशा–जनक ही है। आज के शासक या समाजनेता स्वार्थसिद्धि के लिये एक दूसरे को ऊँचा–नीचा चढ़ाना जानते हैं, लेकिन किसीको अप नाना नहीं जानते। वे अनिच्छनीय वातावरण या धड़ाबन्दी या रोग खड़ा करके अपनी बहादुरी दिखलाना और दूसरों का दिल दुखाना जानते हैं। ऐसे शासक या समाजनेता किसी समाज और धर्म का क्या कुछ सुधार कर सकते हैं ?।

२ प्रश्न—पर्युषण का मतलब क्या ?, उसके मन्तव्य में गच्छों की भिन्नता क्यों है ?।

उत्तर—सांवत्सरिक प्रतिक्रमण किये बाद ७० दिन पर्यन्त साधु–साध्वीयों को एक जगह स्थिर रहना, पर्युषण शब्द का यही मतलब है। पूर्वकाल में भाद्रवसुदि ५ के पहले साधु–साध्वी विहार करते रहते थे। परन्तु समय का विचार करके बहुश्रुताचार्योंने आषाढसुदि १४ से कार्त्तिकसुदि १४ तक एकत्र–निवास की मर्यादा कायम की। तब से चार महीना का एक स्थान पर निवास होने लगा और पर्युषण शब्द उसी अर्थ में रूढ हो गया।

चातुर्मास में श्रावण या भाद्रव मास अधिक आ पड़ने पर कतिपय गच्छवाले आषाढसुदि १४ से पचास या उगुण–

पचासवें दिन वार्षिक-प्रतिक्रमण (पर्युषण) करते हैं और कतिपय गच्छवाले अधिक मास को न मान कर द्वितीय भाद्रव मे ही पर्युषण करते हैं। यह भिन्नता गच्छ-ममत्व से चल पड़ी है पर इस विषय में परस्पर विद्रोह पैदा करके खंडना-त्मक प्रवृत्ति या विघातक वातावरण में पड़ना अनिच्छनीय है। खरतर, अचल और लौंकागच्छ तपागच्छ (सौधर्मबृहत्तपोगच्छ) से जब जुदे पडे तब उनके सचालकोंने जो मन में आया वह राग गाना आरम्भ कर दिया और भद्रप्रकृति के लोगों को वाडे में घेर कर परस्पर खंडन-मंडन का जंग मचा दिया-जिसने शासनकार्यों में भिन्नता का रोग फैलाया, जनता में वैमनस्य बढाया और शासन के अग को छिन्न-भिन्न कर दिया।

जो जिस गच्छ का हो वह अपने गच्छाचार्य की आज्ञा से धर्माचरण करता रहे उसमें किसीको वैमनस्य पैदा करने कराने की आवश्यकता नहीं होना चाहिये। रहा अक्ता-पालन उसको एक दूसरे के पर्वाराधन में अच्छा जान कर पालन कर लेना सप वर्द्धक है। अगर अक्ता पालन में किसी तरह की बाधा उपस्थित होती हो तो अपने अपने पर्व-दिवसों मे अक्ता पालन कर लेना चाहिये, किन्तु उसके लिये विद्रोह पैदा करके लड़ना अच्छा नहीं है।

गच्छों के प्रपच मे पड़ कर उनकी भिन्नताओं में से सत्यांश को खोज निकालना सहल नहीं है। उसके लिये बहुत समय

और पूर्ण शास्त्रबल चाहिये। इसलिये इन प्रपचो में न पड़ कर निज निज-गच्छाचार्यों की आज्ञा में सन्तोष मान कर पर्वाराधन करते रहना यही मार्ग उत्तम और तारक समझना चाहिये।

३ प्रश्न—खरतरगच्छीय लोग दो खमासमण देकर अब्भुट्ठियो खाम कर, सामायिक मे तीन बार 'करेमि भंते' का पाठ उचर के इरियावहि करते हैं, शास्त्र मे क्या यही विधि है ?।

उत्तर—खरतरगच्छीय लोग अपनी गच्छमर्यादानुसार विधि से सामायिक करते हैं वह उसी गच्छवालों को मान्य है, सब को नहीं। आगमकारोंने सामायिक में तीन बार करेमि भंते का पाठ उचरने की आज्ञा नहीं दी। इसी प्रकार तपागच्छाचार्यों के निर्मित ग्रन्थों में प्रथम इरियावहि करके एक बार सामायिक दडक उचरने का लिखा है वह भी उसी गच्छवालों को मान्य है, सब को नहीं।

श्रीसौधर्मबृहत्तपागच्छ में प्रथम द्वादशावर्त्तविधि से गुरु या स्थापनाचार्य को वन्दन करके एक बार सामायिक का पाठ उचर के इरियावहि की जाती है। यह विधान आगमोक्त और प्रामाणिक आचार्यों के रचित ग्रन्थों के अनुसार है। आवश्यक चूर्णि, आवश्यकबृहद्वृत्ति, योगशास्त्र, नवपदप्रकरण, धर्मसंग्रह, श्रावकदिनकृत्य, श्राद्धप्रतिक्रमणचूर्णि, पचाशकचूर्णि, आदि सर्व मान्य सूत्र-ग्रन्थों में गुरुवन्दन पूर्वक सामायिकदडक उचर के इरियावहि करने की आज्ञा दी गई है।

प्रश्न ४—प्रतिक्रमण और सामायिक का कोई टाइम नियत है या चाहे जब कर सकते हैं ?।

उत्तर—सामायिक करने का टाइम नियत हो ऐसा लेख कहीं वाचने या देखने में नहीं आया, लेकिन ' सामायिक मे श्रावक पढे, गुणे, आवृत्ति करे और स्वाध्याय करे ' शास्त्रों में ऐसा उल्लेख होने से मालूम होता है कि–यदि सामायिक में अभ्यास या स्वाध्याय करना हो तो अनियत टाइम मे जब चाहे तब सामायिक कर लेना चाहिये। श्रावक अपनी सहुलियत से सामायिक कर सकता है। शरीरस्वास्थ्य, चिन्तापनोद और शान्तिलाभ के लिये श्रावक को चाहे जिस टाइम पर सामायिक कर लेना आवश्यक और आत्महितकर है। आवश्यकनिर्युक्तिकार फरमाते हैं कि—

" सामाइयम्मि उ कए, समणो इव सावओ हवइ जम्हा।
एएण कारणेण, बहुसो सामाइय कुज्जा ॥ १ ॥ "

—सामायिक मे रहा हुआ मनुष्य साधु के समान कहा गया है। इससे श्रावक को सामायिक बार बार करना चाहिये। सामायिक करने के लिये कोई टाइम नियत नहीं है। इसीसे सूत्रकारने ' बहुसो सामाइय कुज्जा ' इस वाक्य से बार–बार सामायिक करने का आदेश दिया है।

उत्सर्ग–मार्ग से वन्देत्तु कहते हुए आधा सूर्य अस्त हो और शेष भाग अस्त के बाद पूर्ण हो जाय इस ढग से दैव-

सिर, तथा प्रतिक्रमण पूर्ण होने पर दश पडिलेहन करते हुए सूर्योदय हो जाय इस ढग से रात्रिक प्रतिक्रमण का टाइम है। अपवाद-मार्ग से दिन बारह बजे से रात्रि के बारह बजे तक दैवसिक और रात्रि के १२ बजे से दिन के १२ बजे तक रात्रिक-प्रतिक्रमण का टाइम समझना चाहिये।

खेती समय पर सफल होती है, इसलिये यथा-शक्ति नियत टाइम पर ही प्रतिक्रमण करने की खप रखना अच्छा है। आगमाज्ञा भी है कि-' कालो काल समायरे ' हरएक धर्मक्रिया कालोकाल करना उत्तम है। आज की प्रचलित प्रतिक्रमण-क्रिया का टाइम प्राय आपवादिक (कारणिक) है- जिसका सुधारा होना आवश्यकीय है।

५ प्रश्न—चैत्यवन्दन क्रिया जिनालय में किये बाद वह क्रिया प्रतिक्रमण में फिर करना या नहीं ?।

उत्तर—पहले जिनालय मे ही चैत्यवन्द करके सब कोई प्रतिक्रमण करते थे और फिर उसमें उनको चैत्यवन्दन करने की जरूरत नहीं थी। आजकल प्रमाद या उतावल के कारण जिना-लय में कोई चैत्यवन्दन करते हैं, कोई नहीं और कोई दर्शन ही करके आते है, कोई बिना दर्शन। अतएव जैनाचार्योंने समय को देख कर चैत्यवन्दनक्रिया प्रतिक्रमण में दाखिल कर दी जो अनुचित नहीं है। स्थापनाचार्य और जिनालय परमेष्ठी स्वरूप ही माने गये हैं। इसलिये स्थापनाचार्य या गुरुसम्मुख प्रतिक्रमण चैत्यवन्दन-क्रिया करने में किसी तरह की हरकत नहीं है।

६ प्रश्न—प्रतिक्रमण तपस्या पूर्वक ही करने को कोई कोई कहते हैं तो बिना तपस्या के यह हो सकता है ? ।

उत्तर—प्रतिक्रमणक्रिया आलोचना के निमित्त की जाती है । तपस्या करना न करना इच्छा पर निर्भर है । उसका प्रतिक्रमण के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है । तपस्या हो या न हो पर प्रतिक्रमण श्रावक को अवश्य करना चाहिये । इसी प्रकार जिसने बियासणा, एकासणा,आदि तप किया हो उसको भी अकारण प्रतिक्रमण किये बिना नहीं रहना चाहिये । आजकल के क्रियाशिथिल, श्रद्धाविहीन कुछ लोग कहते हैं कि विना व्रत ग्रहण किये प्रतिक्रमण करना किस काम का ? ' वे लोग गफलत में है और अनभिज्ञ हैं । श्राद्धप्रतिक्रमण–कार स्वय कहते हैं कि—

" पडिसिद्धाण करणे, किच्चाणमकरणे पडिक्कमण ।
असद्दहणे अ तहा, विवरीयपरूवणाए अ ॥ ४८ ॥"

करने योग्य कार्य को न करने, नहीं करने योग्य कार्य को करने, जिनवचन पर आत्म–विश्वास न रखने और सूत्र-विरुद्ध प्ररूपणा करने से जो पाप लगा उसको हटाने के लिये प्रतिक्रमण किया जाता है ।

७ प्रश्न—सामायिक मे उपन्यास, नवलकथा या अजैन ग्रन्थ बाच सकते है या नहीं ? ।

उत्तर—वैराग्योत्पादक और धर्म–स्वरूप के प्रतिपादक उपन्यास, नवलकथा, आदि ग्रन्थ वाचने से सामायिक में कोई दोषापत्ति नहीं है। जिन ग्रन्थों के वाचने से आत्मा शंकाशील बने, आत्मविश्वास बिगड़े, विषय विकार बढे और सांसारिक भावना जागृत हो वैसे ग्रन्थ सामायिक में नहीं वाचना चाहिये।

८ प्रश्न—घडियाल, कटासना और चरवला के बिना सामायिक हो सकती है या नहीं ?।

उत्तर—माला फेरने या पुस्तक वाचने से प्रथम ४८ मिनीट का टाइम कायम कर लिया जाय तो घडियाल के बिना भी सामायिक हो सकती है। टाइम का पता लगे विना सामायिक करने में उसकी टाइम पूरी हुई या अधूरी रही इसका पता नहीं लगता। इसलिये पहले टाइम का ज्ञान करके फिर उसी नियम से सामायिक करते रहना चाहिये। कटासना, चरवला और मुखवस्त्रिका सामायिक में रहना जरूरी है। कदाचित् चरवला का योग न मिले तो चल सकता है, लेकिन कटासना और मुखवस्त्रिका विना सामायिक नहीं हो सकती। अगर तीनों चीजों का अभाव हो और सामायिक करने का नियम लिया हो तो सामायिकदंडकोच्चार के विना निर्विघ्न स्थान पर अडतालीस मिनीट पर्यन्त ध्यान रूप सामायिक कर लेना चाहिये जिससे नियम भंग न हो।

९ प्रश्न—अखबार बांचना, किसीको फैसला देना और वर्णमालादि सिखाना सामायिक में ठीक है या नहीं ?।

उत्तर—वैराग्यजनक, शासनोपकारक, और धार्मिक-इतिहास के लेखवाले अखबारों के सिवा अन्य अखबार सामायिक में नहीं बांचे जा सकते। फैसला देने में एक दूसरे को भला बुरा लगना स्वाभाविक है, जिससे सामायिक दूषित हुए बिना नहीं रहती। इसलिये सामायिक में फैसला देना अच्छा नहीं। धर्मग्रन्थों के प्रवेशार्थ किसीको वर्णमालादि का शिक्षण दिया जाय तो अच्छा ही है, किन्तु संसार प्रवृत्ति के लिये सामायिक में शिक्षण देना हानिकारक है। जिस शिक्षण से सावद्य आरम्भ-समारम्भ की प्रवृत्ति बढे वह सामायिक में सर्वथा हेय समझना चाहिये।

१० प्रश्न—स्वप्नदोषजन्य अशुचि को साफ किये बिना सामायिक हो सकती है या नहीं ?।

उत्तर—अशुचि को साफ किये बिना सामायिक नहीं हो सकती। अगर स्नान और वस्त्र-धावन का मौका न मिले तो अशुचि भाग को साफ कर लेना चाहिये। साधुओं को भी अशुचि मिटाये बिना स्वाध्याय ध्यान करना नहीं कल्पता।

११ प्रश्न—बालक को पास में रख कर सामायिक हो सकती है ?, सामायिक पाठ लेने के पहले खास कारण में बाहर जा सकते हैं या नहीं ?।

उत्तर—बालक रोता या भागता न हो और चुपचा बैठा रहता हो तो सामायिक लेने में कोई हरकत नहीं है अगर रोता हो, बार–बार भाग जाता हो या दो घडी पर्यन्त चुपचाप बैठा न रहता हो तो ऐसी हालत में जब तक बालक को सभाल रखने का प्रबन्ध न हो जाय तब तक सामायि लेना अच्छा नहीं है। सामायिक का आरम्भ नवकार, पंचिंदि और गुरुवन्दन से ही माना जाता है और उसकी पूर्णता पार पर होती है। इसलिये सामायिक के आरम्भ से पूर्णता पर्य बीच में यदि खास कारण भी आ जाय तो भी कहीं नहीं उ सकता। आगम में कहा है कि—

> सामाइय तु काउ, गिहकम्म जो अ चितए सड्ढो।
> अट्टवसट्टोवगओ, निरत्थय तस्स सामाइय ॥ १ ॥
>
> अज्ज घरे नत्थि घय, हिंग लोण च इधण नत्थि।
> जाया य अज्ज तरुणी, कल्ले कहचो होहि य कुडुब ॥ २ ॥

जो श्रावक सामायिक में घर–कार्यों की चिन्ता करता है वह आर्तध्यान के वश हो अपनी सामायिक को निष्फल बनाता है। आज घर में घी, हींग, नमक, लकडी नहीं है और स्त्री जवान है तो कल कुटुम्ब का निर्वाह किस प्रकार होगा, इत्यादि आर्तध्यान करने से सामायिक निष्फल हो जाती है।

१२ प्रश्न—सामायिक में शरीर को मोडना, श्लेष्म को

साफ करना, लिखना, शान्तिपाठ और नवस्मरणादि पाठ करना या नहीं ? ।

उत्तर—नहीं चलते उवासी लेना, शरीर मरोडना और अग संचालन करना पडे तो सामायिक में दोषापत्ति नहीं है । श्लेष्म आ जाय तो उसको कपडे में साफ करना अथवा जमीन पर थूंकना या डालना पडे तो उस पर धूल डाल देना चाहिये, जिससे चींटी, मक्खी आदि छोटे जन्तु उसमें चिपक कर न मर सकें । श्रावक की सामायिक दो घडी (४८ मिनीट) की है, इससे उसमें पढ़ने, आवृत्ति करने या माला फेरने के सिवा लेखनकार्य करने की आज्ञा नहीं है । कारण या गुरु आज्ञा की बात अलग है । निष्कामभाव से स्वाध्याय के रूप में सामायिक में शान्तिपाठ या नवस्मरणादि पाठ करना निर्दोष है, कामना से नहीं करना चाहिये ।

१३ प्रश्न—पग पर पग चढा कर बैठना या बैठे हुए सामायिक उचरना ठीक है या नहीं ? ।

उत्तर—सामायिक में पग पर पग चढा कर बैठना असभ्यता और अभिमान सूचक है, अत उस आदत को छोड देना चाहिये । बैठे हुए सामायिक उचरना या प्रत्याख्यान लेना अविनय है, इसलिये सामायिक खड़े होकर ही उचरना या लेना चाहिये । धार्मिक-क्रियाओं में आलस्य रखने से उनका वास्तविक फल नहीं मिल सकता ।

१४ प्रश्न—सामायिक लिये बिना प्रतिक्रमण हो सकता है ? और उसमें शरीर बाधा टाल सकते हैं ? ।

उत्तर—श्रीदेवेन्द्रसूरिरचित–श्राद्धप्रतिक्रमणवृत्ति के 'प्रतिक्रमण च कृतसामायिकैनैव कर्त्तव्यम्' इस कथन से सामायिक लिये बिना प्रतिक्रमण नहीं हो सकता । प्रतिक्रमण करते हुए दस्त या पेशाब की हाजत हो जाय तो उसको साधु के समान जयणा से निवृत्त कर लेना चाहिये, पर उसको रोकना अच्छा नहीं है ।

१५ प्रश्न—बिजली, ग्यास या दीपक की रोशनी में बाच कर प्रतिक्रमण हो सकता है या नहीं ? ।

उत्तर—ग्यास, दीपक की रोशनी में ज्यादह और बिजली की रोशनी में थोड़े जीवों की हिंसा होना तो सम्भव ही है, इसमें उसकी रोशनी में बाच कर प्रतिक्रमण नहीं हो सकता । 'बीज दीवातणी उजेही हुइ' अतिचार के इस वाक्य से बिजली या दीपक की रोशनी शरीर पर पड़ने से अतिचार–दोष लगता है । अगर पडिकमण न आता हो और ग्यास, दीपक या बिजली की रोशनी का योग हो तो शरीर पर प्रकाश न पड़ सके उस तरीके से बाच कर प्रतिक्रमण किया जा सकता है, सबब कि न करने की अपेक्षा प्रतिक्रमण कर लेना लाभ–दायक है ।

१६ प्रश्न—खरतरगच्छीय लोग आमवमगड्डा तक जय

वीयराय कहते और प्रतिक्रमण में निज गुरुओं का काउस्सग्ग करते हैं वह ठीक है ?।

उत्तर—आभवमखंडा तक जय वीयराय कहना एवं अपने गुरुओं का प्रतिक्रमण में कायोत्सर्ग करना, यह खरतरगच्छवालों के लिये उनकी मान्यता से ठीक है। इतर गच्छवालों की मान्यता से यह ठीक नहीं है। संसार में जो गच्छ निकलता है वह अपनी कुछ न कुछ जुदाई दिखलाता है पर उस जुदाई को सब मंजूर कर लें यह कभी नहीं हो सकता।

१७ प्रश्न—दैवसिक प्रतिक्रमण में तिविहार का पच्चक्खाण लेनेवाला कितनी रात्रि तक जलपान करे ?।

उत्तर—जैनियों के लिये रात्रिभोजन और निशि जलपान का विधान नहीं है, क्यों कि रात्रि में भोजन मांस के समान और जलपान रुधिर के समान बताया है। उपदेशप्रासादकारने लिखा है कि—

रक्तीभवन्ति तोयानि, अन्नानि पिशितानि च।
रात्रौ भोजनसक्तस्य, ग्रासे तन्मांसभक्षणम् ॥ १ ॥
चतुर्विधं त्रियामायामशनं स्यादभक्ष्यकम्।
यावज्जीवं तत्प्रत्याख्यानं, धर्मेच्छुभिरुपासकैः ॥ २ ॥

—रात्रि में जलरुधिर और अन्न मांस के सदृश है इससे रात्रि-भोजन में आसक्त मनुष्य के उसका प्रति-ग्रास मांस-

भक्षण के समान है। रात्रि में चारों प्रकार का आहार अभक्ष्य (खाने के योग्य नहीं) है। इसलिये धर्माभिलाषी श्रावकों को रात्रि में उनका परिभोग करना छोड़ देना चाहिये। क्यों कि-

> कर चरणफुट्ट केसा, बीभच्छा दुह वा दरिद्दा य।
> तणदारुजीविया ते, जेहि य भुत्त वियालम्मि ॥ १ ॥

जो रात्रि-भोजन करते हैं वे लूले, पगु, गजे, कदाकृति (बदसूरत), दु खी, दरिद्री, तृण और काष्ठभारों से आजीविका करनेवाले होते हैं।

अगर रात्रि में जलपान छूट न सकता हो तो तिविहार का प्रत्याख्यान लेनेवालों को रात्रि के प्रथम प्रहर तक ही जलपान करना अच्छा है। कितने मर्तबा पीना यह पीनेवाले की इच्छा पर निर्भर है। लेकिन यथाशक्य इस आदत को शनै-शनै छोड़ देने में अधिक लाभ है।

कुक्षी (धार) स० १९९३ श्रावणशुक्ला १५

१८ प्रश्न—घड़ियालों का आविष्कार नहीं था तब टाइम का ज्ञान किससे किया जाता था?।

उत्तर—घडियालों के प्रादुर्भाव के पहले दिन को पादच्छाया या शकु-छाया और रात्रि को तारामडल के उदयास्त से का पता लगाया जाता था। जिन्हें घड़ियाल देखना

नहीं आती वे जगली जातियाँ आज भी टाइम का ज्ञान छाया व तारामडल से ही कर लेती हैं जो घडियालों की अपेक्षा बरावर निकलता है। ज्योतिषी लोग भी असली टाइम जानने के लिये उक्त नियम का ही सहारा लेते हैं। गुरुदेव श्रीमद्-विजय-राजेन्द्रसूरीश्वरजी महाराज प्रतिष्ठा, अजनशलाका, दीक्षा-प्रदान, आदि कार्य पादच्छाया, शकुछाया या वेला-यत्र से टाइम निकाल कर करते कराते थे। घड़ियालों का टाइम तो गड़बड़ भी हो जाता है लेकिन उक्त टाइम में एक सेकन्ड का भी फरक नहीं पड़ सकता। प्राचीनकाल में सामायिक एव प्रत्याख्यानों का टाइम भी उक्त प्रकार से जाना जाता था। टाइम का ज्ञान सम्पादन करने के लिये और भी कई रीतियाँ हैं जो ज्योतिष के ग्रन्थों से मालूम हो सकती हैं।

१९ प्रश्न—नवकारसी-पोरिसी का टाइम किस प्रकार समझना, उसके पहले उसमें दन्तधावन हो सकता है?।

उत्तर—सूर्योदय से दो घड़ी (४८ मिनीट) पूर्ण होने पर नवकारसी का काल है। वह स्टेन्डर हो चाहे दिनमान, पर कथा दो घड़ी दिन चढना चाहिये। सूर्योदय से सूर्यास्त तक दिन के चार हिस्से करना, उसका पहला हिस्सा पूर्ण होने पर पोरिसी का टाइम समझना चाहिये। सामान्यरुप से पोरिसी का टाइम नीचे मुतानिक है—

महीना	फलाद	मिनीट	महीना	फलाक	मिनीट
कार्तिक	९	६	वैशाख	८	५४
मगसिर	९	१०	ज्येष्ठ	८	४८
पोष	९	१९	आषाढ	८	४२
माघ	९	१०	श्रावण	८	५४
फाल्गुन	९	६	भाद्रव	८	५४
चैत्र	९	०	आसोज	९	०

प्रत्याख्यान की टाइम के पहले दन्तधावन करना प्रत्याख्यान भग होने का कारण है, अत टाइम पूरी हुए पहले दन्तधावन नहीं हो सकता। तिविहार उपवास यदि नवकारसी, पोरिसी, या साढपोरिसी से लिया हो तो उनका टाइम पूर्ण होने पर ही गर्मजल या अचित्त जल से मुख साफ हो सकता है और चादी, सोना या सेल्लोलाइट की जीभी से जिह्वा का मैल उतार सकता है। तिविहार उपवास में गर्मजल कितने वार पीना यह पीनेवाले की मरजी पर निर्भर है। पानी खड़े खड़े नहीं पीना चाहिये। यही बात बियासणा, एकासणा, नीविगइ, आयम्बिल प्रत्याख्यानों के लिये समझ लेना चाहिये। आजकल समाज का बहुत भाग भेडियाचाल का है उनको किसी तरह की छूट दी जाय तो वे प्रत्याख्यान के अग को छिन्न-भिन्न कर बैठे, इसीसे जैनाचार्योंने आपवादिक छूट नहीं दी।

जिसको पूजा करने का नियम हो या पूजा करने का इरादा हो उसको मुखशुद्धि बिना पूजा करना नहीं कल्पती। इसलिये वह नवकारसी आदि प्रत्याख्यानों मे उनकी टाइम के पहले पेट में जल न उतरे उस ढंग से पूजा के निमित्त दन्त-धावन कर सकता है। लेकिन यह नियम पूर्ण उपयोग रखने वाले विवेकी लोगों के लिये ही है, सब के लिये नहीं।

२० प्रश्न—असत्य-भाषण किसको कहना ?।

उत्तर—जो भाषण राग, द्वेष या स्वार्थ पोषण के लिये किया जाय और जिस भाषण से कलह कंकास बढ कर एक दूसरे के मन में वैमनस्य पैदा हो जाय उसको असत्य भाषण समझना चाहिये। आचारांगसूत्र-निर्युक्तिकारने लिखा है कि—

अलियं न भासियव्वं, अत्थिय हु सच्चपि जं न वत्तव्वं।
सच्चंपि होइ अलियं, परस्स पीडाकरं वयणं ॥ १ ॥

असत्य कभी नहीं बोलना, दूसरों को तकलीफ पहुचाने-वाला सत्य वचन भी असत्य होता है, इसलिये पीडाकर सत्य भी त्याज्य समझना चाहिये।

भाषण करते समय देश काल का भी परिज्ञान होना आवश्यकीय है। कभी कभी सत्य भी असत्य और असत्य भी सत्य बन जाता है। देव, गुरु, धर्म पर आघात पहुचने, मिथ्यात्वियों की प्रबलता से धर्मलोप होने और अनेक जीवों

की हिंसा होने का समय उपस्थित हो ऐसी परिस्थिति में असत्य भाषण भी सत्यस्वरूप बन जाता है। इसी तरह राग, द्वेष, प्रलोभन या स्वार्थिक कामना से जो भाषण किया जाता है वह सत्य होने पर भी असत्यस्वरूप हो जाता है। नीतिकारोंने लिखा भी है कि—

उक्तेऽनृते भवेद्यत्र, प्राणिनां प्राणरक्षणम्।
अनृतं तत्र सत्यं स्यात्, सत्यमप्यनृतं भवेत् ॥ १ ॥

—जिन वचनों के बोलने से अन्य जीवों के वध होने या उनको दुःख होने का प्रसंग हो तो वह सत्य भी असत्य है और जिसके बोलने से प्राणियों की रक्षा या उनका दुःख मिटता हो वह असत्य भी सत्य है।

इसलिये जिसमें स्वपर या आत्मकल्याण करनेवाला भाषण हो उसीको सत्य भाषण जानना चाहिये, शेष भाषण को असत्य।

२१ प्रश्न—देवद्रव्य समाज रक्षण में लेने का जो लोग कहते हैं वह ठीक है या नहीं ?।

उत्तर—समाज के रक्षण कार्य में देवद्रव्य लगाने का जो आन्दोलन करते हैं वे भारी भूल के पात्र और शास्त्राज्ञा पर कुठाराघात करनेवाले हैं। देवद्रव्य से समाज की रक्षा नहीं होती, उलटा समाज का अधःपतन होता है। शास्त्रकार फरमाते हैं कि—

भक्खणे देवदव्वस्स, परत्थी गमणेण ना ।
सत्तमं नरय जति, सत्तवारा य गोयमा ॥ १ ॥

देवद्रव्य का भक्षण करने, उसका दुरुपयोग करने और परस्त्रीगमन करने से हे गौतम ! सात वार सातवीं नरक में महावेदनाएँ प्राप्त होती हैं ।

आज के समाजनेता या कार्यकर्त्ताओं मे विवेक की कमी होने से अहंभाव का बोलबाला है–जिससे उन पर किसी भले आदमी की या गुरु की शिक्षा का असर नहीं होता । वे अज्ञ लोग समाज में उपधान, उद्यापन, प्रतिष्ठा, आदि के उत्पन्न द्रव्य को भी देवद्रव्य में मान लेते हैं । फिर उसको मनमाने कार्यों में खर्च करते हैं और कह बैठते हैं कि ' **देव का खाना देवलोक मे जाना ।** ' उनकी यह समझ अज्ञान मूलक और उलटे मार्ग में ले जानेवाली है । अगर ' देव का खाना देवलोक जाना ' यह उक्ति सत्य होती तो ' देवद्रव्य का भक्षण करने वाला सात वार सातवीं नरक में दुःख पाता है ' शास्त्रकारों को ऐसा क्यों लिखना पड़ता ? ।

दर असल में जिनप्रतिमा स्थापन, जिनाभिषेक, प्रभुपूजा, प्रभुआरति, आदि की बोली का उत्पन्न द्रव्य देवद्रव्य में, ज्ञान-पूजा, ज्ञान आरति, कल्पसूत्र या अन्य ज्ञान से सम्बन्ध रखने-वाला द्रव्य ज्ञानद्रव्य में, पालना, स्वप्न, वरघोडे में घोड़ा, रथ, आदि की बोली का उत्पन्न द्रव्य साधारणद्रव्य में और दीक्षा के

समय उपकरण की बोली तथा गुरुगुहली का द्रव्य गुरुद्रव्य में खाते वार जमा होना चाहिये। अपने-अपने खाते की रकम उन्हीं खातों में खर्च करने से द्रव्य का सदुपयोग हुआ कहा जायगा। सब से श्रेष्ठ मार्ग तो यही है कि-साधारण और ज्ञान दोनों खाते परिपुष्ट किये जायँ, क्योंकि साधारण द्रव्य सभी धार्मिक कार्यों में और ज्ञानद्रव्य उसके साधक कार्यों में छूट से लग सकता है।

२२ प्रश्न—ऐसा कोई ग्रन्थ उपलब्ध है जिसमे सारी दुनिया के मजहबों का हाल हो ?।

उत्तर—सारी दुनिया के मत-मतान्तरों का हाल बतलानेवाला ग्रन्थ अभी तक कहीं देखने मे नहीं आया। षड्दर्शन-समुच्चय, तत्त्वाख्यान तत्त्वनिर्णय-प्रासाद, जैनतत्त्वादर्श, सर्वदर्शनसंग्रह, मतचन्द्रिका, आदि जैन-अजैन ग्रन्थ उपलब्ध हैं। लेकिन उनसे कतिपय मजहबो के सिवा सभी मजहबों के हाल जानने की आशा-पूर्ति नहीं हो सकती।

२३ प्रश्न—वेदों की भाषा संस्कृत है या अपभ्रंस ?।

उत्तर—वेद संस्कृत भाषामय हैं उनके अनेक शब्दों की सिद्धि पाणिनीय व्याकरण से नहीं होती। उसकी सिद्धि के लिये स्वतन्त्र व्याकरण बनाया गया है जो प्रातिशाख्य नाम से प्रसिद्ध है। हाँ, कुछ अपभ्रंस शब्दों का मिश्रण वेदों में भी पाया जाता है जिसको उनके माननेवाले अपभ्रंस नहीं मानते।

२४ प्रश्न—विवेकानन्दस्वामी के विचार जैनधर्म से मिलते हैं या नहीं ?।

उत्तर—विवेकानन्दजी के विचार आध्यात्मिक होने पर भी उनमें कई बातें जैनधर्म से विरुद्ध हैं जो उनके प्रकाशित ट्रेक्टों को तुलनात्मक-दृष्टि से मनन करने पर जानी जा सकती हैं। विवेकानन्द का गृहस्थ जीवन था-जिसको उस सम्प्रदाय के लोग साधु या परमहंस जीवन मानते हैं। इसलिये उनके सभी विचार अनुमोदन के लायक नहीं है।

२५ प्रश्न—मुक्तिफोज के संचालक कौन हैं ?, वह सराहनीय है या नहीं ?।

उत्तर—मुक्ति फौज के संचालक मुख्यता से तो क्रिश्चियन लोग मालूम होते हैं। वर्त्तमान में इसे हिन्दुओंने भी सहयोग दिया है पर यह मत सराहने योग्य नहीं है। दिखावे मात्र के लिये इसका बाह्य रंगढंग आध्यात्मिकसा है, किन्तु यह विषय-प्रधान और नास्तिकों का उपभेद है। जो लोग शास्त्रीय कठिनतर धर्मक्रियाकांडों में शिथिल और विषयाकांक्षी हैं वे इसमें सम्मिलित हो, अपना बाह्य स्वरूप आध्यात्मिकसा दिखला कर उसकी आड में मनमाना विषय पोषण करते हैं जो सर्वत हेय समझना चाहिये।

२६ प्रश्न—निकाचितकर्म का बन्ध सभी जीवों क होता है या नहीं ?।

उत्तर—योगों की तीव्रता से चारों गति के जीव निकाचितकर्म का बन्ध करते हैं और विपाकोदय के समय उसका शुभ या अशुभ फल भुगतते हैं। इस कर्मबन्ध का फल भुगते बिना छुटकारा नहीं होता। शास्त्रकार फरमाते हैं कि—

वह मारण अब्भक्खाण—दाणपरधण विलोयणाइण।
सव्वजहन्नो उदओ, दसगुणिओ एक्कसि कयाण॥ १॥

तिव्वयरे अ पओसे, सयगुणि सयसहस्सकोडिगुणो।
कोडाकोडिगुणो वा, हुज्ज विवागो बहुतरो य॥ २॥

—जीवों का वध करने, तर्जना देने, उन पर कलंक चढ़ाने, और पराये धन को चुरा लेने आदि जो पापकर्म किया जाता है उदयकाल में जघन्य से उसके दशगुने फल भोगने पड़ते हैं। अगर वही कर्म तीव्र द्वेष परिणाम से किया गया हो तो उदयकाल में उसको शतगुना, लाखगुना, क्रोड़गुना, कोटाकोटीगुना अथवा इससे भी अधिक गुना भोगना पड़ता है।

२७ प्रश्न—शयनागार में तीर्थ, जिनप्रतिमा, या गुरुदेवों के फोटो और तस्वीरें रखना या नहीं?।

उत्तर—यदि शयनागार में स्त्रियों से रतिक्रीड़ा, हास्य, कुतूहल, आदि कर्म किया जाता हो तो फोटो या तस्वीरें रखने से आशातना लगती है। अगर वैसा कोई प्रसंग न हो तो प्रतिदिन दर्शनार्थ फोटो तस्वीरें रखने में किसी तरह का दोष नहीं है।

२८ प्रश्न—तपस्या करने के लिये पर्वतिथियों का प्रतिबन्ध है, या उनके बिना भी तप किया जा सकता है ?।

उत्तर—तपस्या के लिये तिथियों का प्रतिबन्ध कुछ नहीं है, चाहे पर्वतिथि हो चाहे अपर्वतिथि। तप करने की इच्छावाला अपनी भावना से यथाशक्ति तपस्या कर सकता है। पर्वतिथियों की आराधना पर इसलिये जोर दिया गया है कि— उनमें प्राय परभवायु का बन्ध पडता है, इसलिये उनमें तपस्या आदि धर्मकृत्य किया जाय तो अशुभायु नहीं बधेगा। कहने का तात्पर्य यह है कि धार्मिक कृत्य करने के लिये सभी दिन खुले हुए हैं, उनमें धर्मकृत्य करने की बिलकुल रुकावट नहीं है। अपर्व दिवसों में की-हुई तपस्या आदि सत्क्रिया निष्फल नहीं होती। जो लोग अपर्व-तिथियों में धर्माराधन नहीं करते, उन्हें पर्व-दिवसों में तपस्यादि अवश्य करना चाहिये।

२९ प्रश्न—प्रतिज्ञा लेकर उसका भग करने की अपेक्षा प्रतिज्ञा न लेना अच्छा है या नहीं ?।

उत्तर—धर्मपतित या धर्मविहीन लोग ही प्रतिज्ञा भग की अपेक्षा प्रतिज्ञा न लेना ऐसा प्रलाप करते हैं। मनुष्य अपने को कम या अधिक प्रतिबन्ध में रक्खे यह मानवता का गुण है, उसके विकासार्थ मनुष्य को सप्रतिज्ञ बनना ही चाहिये। निरकुश मनुष्य की मानवता का विकास कभी नहीं होता। जो मनुष्य की हुई प्रतिज्ञा का निर्वाह करके उत्तीर्ण हो जाता

है वह मनुष्य कहाने लगता है। पहले अपनी शक्ति, देश, और काल को भलीभाँति देख कर वैसी ही प्रतिज्ञा लेनी चाहिये जो अच्छी तरह निभ सकती हो। कहा भी है कि—

जं सक्कइ तं कीरइ, जं न सक्कइ तस्स सद्दहणा।
सद्दहमाणो जीवो, पावइ अयरामर ठाणं ॥ १ ॥

—अपनी जैसी शक्ति हो वैसा आचरण करना, अगर शक्ति न हो तो सिर्फ धर्म पर दृढ़-विश्वास रखना, क्यों कि धर्म पर श्रद्धा रखनेवाला भी अजरामर पद पाता है।

कर्मोदय से कभी प्रतिज्ञाभंग का अवसर भी आ जाय, पर उससे भयभीत हो प्रतिज्ञा न लेना भारी मूर्खता है। जो मनुष्य मार्ग पाकर उसको भूल जाता है वह फिर भी मार्ग पर आ सकता है। इसी प्रकार प्रतिज्ञा लेकर जो उससे पतित हो जाता है, वह समझाने पर रथनेमि, नन्दिषेण और आषाढ़-भूति के समान फिर प्रतिज्ञा को यथावत् पालन कर सकता है। जिसने कभी कोई प्रतिज्ञा नहीं की वह अपने को दृढ़ता की कसौटी पर कभी नहीं चढ़ा सकता, वह तो सदा पतित ही रहेगा। प्रत्याख्यानपचासककार भी फरमाते हैं कि—

वयभंगे गुरुदोसो, थोवस्स वि पालणा गुणकरी उ।
गुरुलाघवं च नेयं, धम्मम्मि अओ अ आगारा ॥ १ ॥

—व्रतभंग में महादोष है। थोड़ासा व्रतपालन भी लाभदायक

है। धर्म में द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से जो उचित हो उसका विचार करना चाहिये। इसी वास्ते व्रतों के आगार हैं।

३० प्रश्न—श्रीमद् राजचन्द्र आदि के पुस्तकों में क्या सभी बातें श्रद्धा के लायक हैं?।

उत्तर—उनमें कई बातें कल्पित, कई बुद्धिगम्य, कई शास्त्रविरुद्ध और कई व्यावहारिक धर्म की उच्छेदक हैं। उनके वाचने या मनन करने से आत्मविश्वास में शिथिलता पैदा होती है—जिससे मनुष्य आत्मसाधक प्रतिक्रमणादि धर्मक्रियाओं को छोड़ बैठता है और आगे वह अपनी प्रगति नहीं कर सकता। इनके बजाय लोकप्रकाश, उपमितिभवप्रपचा, धर्मबिन्दु, विशेषावश्यक, उपदेशमाला, धर्मसंग्रह, श्राद्धगुणविवरण, आदि ग्रन्थों का वाचन किया जाय तो विशेष लाभप्रद है।

३१ प्रश्न—मत्राधिराज-पार्श्वनाथस्तोत्र के 'सर्वज्ञः सर्वदेवेशः, सर्वदः सर्वगोत्तमः। सर्वात्मा सर्वदर्शी च, सर्वव्यापी जगद्गुरुः॥' इसका क्या अर्थ है?।

उत्तर—(सर्वज्ञः) लोकालोकगत सूक्ष्म-बादर पदार्थों के ज्ञाता, (सर्वदेवेशः) सभी देवों के मालिक-देवाधिदेव, (सर्वदः) मनोवाञ्छाओं के पूरक, (सर्वगोत्तमः) सब में रहनेवाले, उत्तम-श्रेष्ठ, (सर्वात्मा) विश्व के आत्मस्वरूप, (सर्वदर्शी) वस्तुमात्र को देखनेवाले, (सर्वव्यापी) सब को अपने ज्ञान से व्याप्त करनेवाले, (जगद्गुरुः) जीवमात्र के

शिक्षक या रक्षक श्रीपार्श्वनाथ भगवान हैं, बस संक्षेप में इसका यही अर्थ है ।

३२ प्रश्न—तीर्थंकरों के आगे याचना करना या नहीं ? ।

उत्तर—बालक जिस प्रकार अपने माता-पिता के सामने याचना करता है, उसी प्रकार सम्यक्त्वी मनुष्य अपने इष्टदेव अर्हन्तप्रभु के सामने याचना करे तो अयोग्य नहीं है । जय वीयरायसूत्र में प्रभु से धार्मिक याचना की गई है । रत्नाकर पच्चीसीकार कहते हैं कि—

" किं बाललीलाकलितो न बालः,
पित्रो पुरो जल्पति निर्विकल्पः ।
तथा यथार्थं कथयामि नाथ !,
निजाशय सानुशयस्तवाग्रे ॥ "

इसलिये जिनेश्वरों के आगे अपने अभिप्राय को प्रगट करना और उनसे बोधिरत्न मागना निषिद्ध नहीं है । जिनेश्वरों से धन-पुत्रादि की याचना करना दोषजनक है । सासारिक याचना की अपूर्ति में कभी अश्रद्धा हो जाना सभव है और उससे मनुष्य धर्मभ्रष्ट बन जाता है । इसीसे प्रभु के आगे ससार सम्बन्धी याचना को अयोग्य समझना चाहिये ।

दर असल में अपने अभिमत को दूसरों से पूरा कराने की कामना रखना यह कमजोरी है और कमजोर दिल का

मनुष्य सदा हताश रहता है। हरएक व्यक्ति को अपने पैरों के बल खडा होना चाहिये। आशा सदा निराशा का कारण है, उसमें सफलता मिले या न भी मिले। अतएव धर्मानुष्ठान में आशा को बिल्कुल स्थान न देना ही उत्तम है। शास्त्रकार-महर्षियों का कहना है कि—

आशमयाद् विनिर्मुक्तो, धर्मानुष्ठानमाचरेत्।
मोक्षे भवे च सर्वत्र, निस्पृहो मुनिसत्तम.॥ १॥

—धार्मिक समस्त अनुष्ठानों को आशा रहित आचरण करना, यहाँ तक कि मोक्ष-प्राप्त करने के लिये भी आशा को स्थान नहीं देना चाहिये, तभी वास्तविक फल मिलता है।

जो लोग दिल के कमजोर हैं, थोडे-थोडे मामले में शका-शील हो जाते हैं और आत्मिक धर्म के वास्तविक मतलब से वचित हैं उनको स्वधर्म में स्थिर रखने के लिये अपवाद से शास्त्रकारोंने याचना करने की छूट दी है जो उस ढग के लोगों के लिये योग्य है।

३३ प्रश्न—जैनतत्त्वादर्श के अन्तिम प्रकरण में जो ऐतिहासिक हाल है वह क्या सत्य है ?।

उत्तर—उसमें बहुत अंश सत्य और कुछ अंश सशोधन के लायक है, जो शोधकदृष्टि से मालूम हो सकता है। आज ऐसे विषयों के सशोधनार्थ काफी सामग्री उपलब्ध है।

३४ प्रश्न—व्याख्यान उठे बाद श्रावक व्याख्यानदाता आचार्य आदि की पगचपी करते हैं यह रिवाज कैसा ?।

उत्तर—श्रावकों को पगचपी आदि से साधु की परिचर्या (सेवा) करना ऐसा उल्लेख ग्रन्थों में पाया जाता है और इसीसे उसका 'श्रमणोपासक' नाम सार्थक है। लेकिन यह बात कारणिक समझना चाहिये। श्रावकधर्मविधिप्रकरण में आचार्यदेव श्रीहरिभद्रसूरिने लिखा है कि—

तित्थयरभत्तीए, सुसाहुजणपज्जुवासणाए य।
उत्तरगुणसद्धाए, एत्थ सया होइ जइयव्वं ॥ १०७ ॥

—जिनेश्वरों के भक्तिभाव से, सुसाधुओं की सेवा से, उत्तरगुणों की अटूट श्रद्धा और महाव्रतों की अभिलाषा से श्रावक का अपने श्राद्धधर्म में सदा प्रयत्नशील रहना चाहिये।

बस, इस आज्ञा से व्याख्यानदाता की पगचपी करने की प्रथा चालु हुई है। आज गतानुगतिक लोग पगचपी के लिये व्याख्यानदाता पर टूट पडते हैं–जिस से लाभ के बजाय उलटी आशातना होने की संभावना है। अगर पगचपी का लाभ लेना हो तो व्याख्यान के बाद लोगों के चले जाने पर विवेक से पगचपी रूप सेवा करना अच्छा है।

३५ प्रश्न—देवद्रव्य, ज्ञानद्रव्य और साधारणद्रव्य वृद्धि के निमित्त दुकान में रखना ठीक है या नहीं ?।

उत्तर—देवद्रव्य की वृद्धि करना लाभदायक है, लेकिन उसका हिसाब अलग रखना और उसके चेप से सर्वथा बच कर रहना चाहिये। घाटे की हालत में कभी कभी ऐसा अवसर आ जाता है कि सब से पहले देवद्रव्य पर ही निगाह पड़ती है–जिससे उस रकम का समूल नाश हो जाने का मौका उपस्थित होता है। यदि ऐसा न हो तो दूकान में रख कर उस द्रव्य की वृद्धि करने में कोई दोष नहीं है।

आलीराजपुर, सं० १९९४ आश्विनशुक्ला ७

३६ प्रश्न—योगासन का विधान क्यों किया और वह शास्त्रोक्त है या नहीं ?

उत्तर—योगासन से चित्त–निरोध, शरीर–स्वास्थ्य और व्यग्रता का नाश होता है। इसीसे जैन–अजैन ग्रन्थकारोंने इसका विधान बतलाया है और इस विषय के प्रतिपादक ग्रन्थ निर्माण किये हैं। आसन और योग की साधना वही मनुष्य कर सकता है जो एकान्तवासी, नीरोग, निष्कपट और ब्रह्मचारी हो। जो ऐसे नहीं हैं उनकी सारी साधना ढोंग–मात्र है।

३७ प्रश्न—शकुन या ज्योतिष क्या सत्य हैं ?।

उत्तर—यह विषय पूर्व–विद्या से उध्धृत है जो सत्य एवं विश्वास–जनक है। इसके समर्थक जैन अजैनों में अनेक ग्रन्थ विद्यमान हैं–जिनसे यह विषय भले प्रकार जाना जा सकता

है। हरएक वस्तु-विज्ञान के लिये शास्त्र और अनुभव दोनों की आवश्यकता है। शास्त्रज्ञान है पर अनुभव नहीं, अनुभव है पर शास्त्रज्ञान नहीं है तो वह विज्ञान अपनी सफलता में अधूरा है। आज ऐसा ही मामला होने से उसमें सफलता नहीं होती। गुरुगम पूर्वक अनुभव सहित जोतिप का कथन कभी निष्फल नहीं होता। यही बात अगस्फुरण, पल्लीपतन, शकुन, पशुरुत और छींकविचार, आदि के लिये भी जाननी चाहिये।

३८ प्रश्न—सज्झाय शब्द का अर्थ क्या है ?।

उत्तर—विविध रागों में वर्णनात्मक या सादा जिसमें उपदेश गुम्फित किया जाता हो वह 'सज्झाय' कहलाती हैं, जो स्वाध्याय शब्द का ही अपभ्रंस है। ऐसी सज्झायों का प्रभाव जनता के हृदय पर असर कारक पड़ता है। सुरीले गायनों से सुननेवाले मस्त हो जाते हैं और कभी कभी उनमें वैराग्यभावना जाग उठती है। ऐसी विविध रागमय सज्झाएँ जैन अजैनों में अनेक हैं जो नवीन और प्राचीन दोनों हैं। अजैन लोग सज्झाय को पद कहते हैं।

३९ प्रश्न—साधु अपने सम्बन्धियों का परिचय, उनकी सार सभाळ और उनके आय-व्यय का हिसाब रख सकता है या नहीं ?।

उत्तर—जो गृहस्थों या सम्बन्धियों का परिचय रख उनकी सार सभाल करता है, उसके आय-व्यय की व्यवस्था करता है

और उनके सुख-दुःख में सम्मिलित रहता है वह साधु नहीं, अनाचारी या पापश्रमण है। क्यों कि 'थोवो वि गिहिप्पसगो, जइणो पकमारहइ'—गृहस्थों का थोडासा परिचय भी साधु के सयमधर्म को मलिन करनेवाला है। विक्रमचरित्रकार कहते हैं कि—

यतीना कुर्वता चिन्ता, गृहस्थाना मनागपि ।
जायते दुर्गतौ पातः, क्षयश्च तपसः पुनः ॥ १ ॥

—ससारवासियों के आरम्भ जनक कार्यों की स्वल्प भी चिन्ता करते हुए साधुओं का दुर्गति में पडना होता है और उनके तप का नाश होता है।

जोइस-निमित्त-अक्खर, कोउ-आएम-भूइकम्मेहिं ।
करणाणुमोयणाहिं, साहुस्स तवक्खओ होइ ॥ १ ॥

—ज्योतिष, निमित्त, अक्षर, कौतुक और पापकारक आदेश आदि धनोपार्जन के कार्य करने, कराने और उसका अनुमोदन करने से साधुओं के तप (धर्म) का विनाश होता है, अत साधु को इनका त्याग कर देना चाहिये।

४० प्रश्न—उपधान वहन क्या शास्त्रोक्त है ?।

उत्तर—उपधान वहन के लिये शास्त्रों की आज्ञा है। गुरु के पास तपस्यादि विधान से इसके वहन कर लेने बाद ही

प्रतिक्रमण, नवकारस्मरण आदि क्रियाएँ फल-प्रदाता होती हैं। श्रीमहानिशीथसूत्र में लिखा है कि—

से भयव सुदुक्कर पचमगलमहासुअक्खधस्स विणओ वहाण पन्नत्त एसा नियतणा कह बालेहिं किज्जइ ?, गोयमा ! जेण केणइ न इच्छेज्जा एय नियतण अविणओवहाणेण पच मगलसुअनाणमहिज्जइ अज्झावेइ वा अज्झावयमाणस्स वा अणुन्न पयाइ। सेण न भवेज्जा पियधम्मे, न हवेज्जा दढधम्मे, न हवेज्जा भत्तिजुए, हीलिज्जा सुत्त, हीलिज्जा अत्थ, हीलिज्जा सुत्तत्थोभए, हीलिज्जा गुरु, जेण हीलिज्जा सुत्त जाव हीलिज्जा गुरु। सेण आसाएज्जा अतीताणागयवट्टमाणे तित्थयरे आमा एज्जा आयरियउवज्झायमाहुणो, जेण आसाएज्जा सुअनाण-मरिहतसिद्धमाहू। तस्मण अणतससारमाहिंडेमाणस्स तासु सवुडवियडासु चुलसीइलक्खपरिसकडासु सीओसिणमिस्स जोणिसु सुइर नियतणा।

—भगवन्! पचमगल-महाश्रुतस्कन्ध का विनयोपधान अतिकठिन है, बाल-आत्माएँ उसका नियत्रण (भार) किस तरह उठा सकेंगी ?। गौतम! जो कोई मनुष्य नियत्रण से डरता हुआ विनय और उपधानतप किये विना पचमगल-महाश्रुतस्कन्ध (नवकार) को पढ़ता, पढाता और पढने-पढानेवाले को अच्छा समझता है वह उसका प्रियधर्म, दृढधर्म या भक्तियुक्त नहीं है। वह सूत्र, अर्थ, तदुभय, गुरु, तीनों काल के तीर्थंकर, आचार्य, उपाध्याय, साधु, श्रुतज्ञान और सिद्ध भगवन्तों की अवहेलना

और आशातना करता है। इस आशातना से उस पुरुष को अनन्त ससार–समुद्र में सवृत, परिसवृत, शीत, उष्ण और शीतोष्ण आदि चौराशी लाख योनियों में बहुत काल पर्यन्त पराधीन रहना, एव महादु ख सहना पड़ेगा।

मत्र–तत्रादि की सिद्धि के वास्ते भी जब तप, जप, आसन और क्रिया किये बिना काम नहीं चलता और वे सिद्ध नहीं होते, तब नवकार आदि की सफलता उपधानतप किये बिना किस तरह हो सकती है ?। इसीसे उपधान वहन की आवश्यक्ता है। जिससे श्रुतज्ञान की पुष्टि हो, अथवा गुरु के समीप नवकार आदि सूत्रों को सार्थ धारण करने की क्रिया का नाम 'उपधान' है। अतएव उपधान वहन के समय अभ्यस्त प्रतिक्रमण के सूत्रों में जो गलतियाँ पड़ती हो उनको गुरु के पास शुद्ध करना, अगर शुद्ध आते हों तो उनका अर्थ सीखना चाहिये, तभी उपधानक्रिया सार्थक मानी जा सकती है।

आज उपधानवाहकों में नवकारादि सूत्रों के शुद्ध उच्चारण का अभाव है, प्रतिक्रमण तक आता नहीं और उपधान मे बैठ जाते है। लड्डुबाजोंने उपधान पर नये नये टेक्स और नवकारसियाँ करने का स्वार्थिक मनमाना बोझा लाद कर उपधान के अग को दूषित कर डाला है। साधुओं के भी उपधान में स्त्रियों का परिचय अधिक रहता है जो उनके धर्म को दूषित करनेवाला है और कहीं ... विषय की अफवाह भी ...

लगती है। ऐसे धमालवाले उपधान अनिच्छनीय और कर्म बन्ध के कारण जानना चाहिये।

४१ प्रश्न—पोरवाडों की उत्पत्ति कब कहाँ पर हुई ?

उत्तर—ऐतिहासिक खोज से पता चलता है कि गुजरात–मारवाड की सरहद पर समृद्ध भूमि देख कर प्रभु श्रीमहावीर स्वामी के समय में श्रीमाल या श्रीमल्लराजाने अपने नाम से श्रीमाल नगर बसा कर राज्य किया। चारों तरफ के दूर–दूर देश से हजारों व्यवहारी कुटुम्ब श्रीमालनगर में आकर बस गये। श्रीमाल में आने बाद सभी व्यवहारी श्रीमाली महाजन नाम से पहचाने जाने लगे। श्रीमालियों के गोरब्राह्मण पूर्वदेशान्तर गत प्राग्वाटपुर से आकर श्रीमाल में बसने बाद 'प्राग्वाट' ब्राह्मण कहलाये। श्रीमालपुराण में लिखा है कि–विष्णुने लक्ष्मी के कहने से श्रीमाल में अस्सी हजार व्यवहारी और पैंतालीस हजार ब्राह्मणों को बसाये। दो व्यवहारी के पीछे एक ब्राह्मण के पालन का नियम बाँधा। इस हिसाब से दश हजार व्यवहारियों की कमी को गंगा–यमुना के बीच राज्य करनेवाले पुरुरवाचक्रवर्ति से दश हजार क्षत्रियसुभटों को लाकर श्रीमालनगर के पूर्वदिशा में बसाये। इससे वे प्राग्वाट कहलाये। लावण्यसमय रचित 'विमलप्रबन्ध' के द्वितीय–खंड में लिखा है कि—

> नगर निर्मल नगर निर्मल सहजि श्रीमाल।
> मय भट्टइ मड मोकल्या सबल दश जोड़ी किद्धा॥

चक्रवर्त्तिए पौरवा तास पुत्र पुहवी पसिद्धा ।
अवाइ थिर थापिया अति उच्छनि उल्लासि ॥
प्रागवाट तेणि कारणिइ वसिया पूरव पासि ॥ ६२ ॥

—ससार मडल में प्रसिद्ध पुरुरवा चक्रवर्त्तीने अपने पुत्र दस हजार सुभटों को श्रीमालनगर में भेजे। उन्होंने श्रीमाल की रक्षा की—जिससे सारी प्रजा का भय अलग हुआ। अंबामाताने उन सुभटों को श्रीमाल के पूर्व दिशा में वसाये इससे वे प्राग्वाट कहलाये। उन्होंने अपनी गोत्रदेवी अवामाता को कायम करके उसकी महापूजा की।

श्रीवीरनिर्वाण से प्रथम शताब्दी के प्रारम्भ के बाद जयसेन राजा और व्यहारियोंने मिल कर श्रीमाल में हिंसा जनक यज्ञारम्भ किया। उस समय पार्श्वनाथसन्तानीय श्रीस्वय-प्रभसूरिजीने श्रीमाल में पधार कर यज्ञ को बन्द कराया और प्रतिबोध देकर राजा जयसेना आदि पैंतालीस हजार क्षत्रियघरों को जैन बना कर उनका श्रीमाली—महाजनसघ स्थापन किया। एव उनके गोरब्राह्मणों को जैन बना कर उनका प्राग्वाट वश कायम किया। इसी प्रकार पद्मावतीनगरी में भी स्वयम्प्रभ-सूरिजीने यज्ञविधान को रोक कर लाखों लोगों को जैनधर्मी बना कर उनको प्राग्वाटवश में सम्मिलित किये।

जयसेनराजा के छोटे पुत्र चन्द्रसेनने राज्यगादी न मिलने के कारण अर्बुदाचल के पास चन्द्रावती नगरी बसा कर राज्य

किया । चन्द्रसेन के प्रयत्न से अर्बपति और क्रोडपतियों के बहोत्तर हजार घर श्रीमाळ से निकल कर चन्द्रावती में बस गये । बाद में उएसपट्टन(ओसिया) और फिर अणहिलपत्तन (पाटण) बसने पर वहाँ भी श्रीमाल से आ कर हजारों कुटुम्ब बस गये । श्रीमाल की आबादी खोखली हो गई, वह जन धन से रिक्त हो गया, तब उसकी सुरक्षा के वास्ते पुरुरवा चक्रवर्ती से मदद मागी गई। उसने दश हजार क्षत्रिय सुभट श्रीमाल भेजे और उन्होंने सब तरह से श्रीमाल की सुरक्षा करके पूर्व तरफ निवास किया और वे प्राग्वाट नामसे प्रख्यात हुए । श्रीविमलचरित्रकाव्य में लिखा है कि—

मप्तदुर्गप्रदानेन, गुणसप्तकरोपणात् ।
पुटसप्तकयन्तोऽपि, प्राग्वाटज्ञाति विश्रुता ॥ ६५ ॥

अम्बिकादेवीने प्रसन्न होकर पोरवाडों को सात दुर्ग (वर दान) दिये, उनमें सात गुण आरोपण किये । सात गुणपुटक सम्पन्न पोरवाड (प्राग्वाट) ज्ञाति समार में प्रख्यात हुई । वे सात वरदान इस प्रकार है—

आद्य प्रतिज्ञानिर्वाही, द्वितीय प्रकृतिस्थिर ।
तृतीय प्रौढवचन, चतु प्रज्ञाप्रकर्षवान् ॥ ६६ ॥
पञ्चम तु प्रपञ्चज्ञ , षष्ठ प्रबलमानसम् ।
सप्तम प्रभुताकाङ्क्षी, प्राग्वाटे पुटसप्तकम् ॥ ६७ ॥

—१ स्वप्रतिज्ञा का निर्वाह करना, २ स्वभाव को स्थिर

रखना-शान्तचित्त रहना, ३ वचनदार वचन बोलना, ४ बुद्धि-मत्ता रखना, ५ हरएक बात के आशय को समझना, ६ निर्भय रहना-चित्त को दृढ रखना और ७ प्रभुता(मोटाई) की अभिलाषा रखना पोरवाडों में ये सात गुण सदा रहेंगे।

उपरोक्त प्रमाणों से इस निर्णय पर स्थिर रहना पडता है कि-पोरवाडों की उत्पत्ति श्रीमाल नगर में ओसवालोत्पत्ति के पहले हुई। प्राग्वाट शब्द के ही पोरवाड, पौरवाड़, पोरवाल, पौरुवाल आदि अपभ्रंस (लोकभाषा के) शब्द हैं। श्रीमालनगर की अवनत दशा होने पर जो पोरवाड़ सोरठ तरफ गये वे सोरठिया-पोरवाड, जागलदेश में गये वे जागडा या जागला पोरवाड, कडोलिया प्रान्त में गये वे कपोल या कडोलिया पोरवाड, पद्मावती में गये वे पद्मावती-पोरवाड, और सवाइ माधवपुर गये वे अठावीसा-पोरवाड कहाने लगे। जो लोग अपने मारवाड देश में ही रहे वे केवल पोरवाड इस शुद्ध अवटक से विख्यात रहे। दर असल में विचार किया जाय तो विभिन्न स्थानों में बसने के कारण अलग-अलग पहिचाने जानेवाले सभी पोरवाड एक ही ज्ञाति के हैं, परन्तु कालान्तर में उनका पारस्परिक सम्बन्ध टूट जाने से वे अपने को अलग समझने लगे हैं जो इस जाति की विशालता का मुख्य ध्वंसक कारण है।

पोरवाडों में जावडशाह, धरणाशाह, रत्नाशाह आदि धर्मवीर, विमलशाह, वस्तुपाल, तेजपाल आदि बहादुर-युद्धवीर

और पेथडशाह, मुनालशाह आदि दानवीर अनेक नररत्न हो गये हैं–जिन्होंने राजदरबार और समाज में भारी सन्मान पाया था। आज भी इनमें दानवीर और धर्मवीरों की कमी नहीं है। यदि पोरवाडों का प्राचीन–अर्वाचीन इतिहास लिखा जाय तो जैनों में सब से मुख्य स्थान पोरवाडों को ही मिलेगा। पोरवाडों को जैन बनाने का सौभाग्य आचार्य–स्वयम्प्रभसूरि, आचार्य–उदयप्रभसूरि, रूपश्रीविरुद्धारक–आचार्य–देवसूरि, आचार्य–हरिभद्रसूरि आदि पूज्यों को है।

४२ प्रश्न—जो भाट का काम करते हैं उनको यति कहना या कुलगुरु, या और कुछ ?।

उत्तर—राजपूत, सोनार, सुथार, लुहार, माली, धनकर, कुंभार, तेली, छिंपुधाची (रंगरेज) आदि जातियों में वंशाव लियाँ बाचने लिखनेवाले लोग भाट कहलाते हैं और वे उन उन जातियों के उपास्य देवों के उपासक होते हैं। कलबी आदि कुछ जातियों में भवाई कहाते हैं जो नृत्य, गान और अपने यजमानों की वंशावली बाचने लिखने का व्यवसाय करते हैं।

जैनों में वंशावली लिखने बाचनेवाले लोग कुलगर, कुल गोर, कुलगुरु कहलाते हैं और ये जैनधर्मी होते हैं। कुलगुरु महाना, महात्मा, मत्थेणा, उपाध्याय, आचारी एवं गोष्ठी इन नामों से भी ये पहिचाने जाते हैं। अपने–अपने वटवार में आये हुए गोत्रवाले यजमानों के यहाँ यथावकाश जाकर ये लोग उनकी

वंशावली वाचने और लिखने का धँधा करते हैं, इसलिये कुलगुरुओं का व्यवसाय भाटों के समान हैं ऐसा कहना अनुचित नहीं है। केवल तफावत यही है कि कुलगुरु जैन होते हैं और भाट तथा भवाई अजैन होते हैं। वर्त्तमान मे कुलगुरु जाति के निवासस्थान को पोसाल कहते हैं जो पौषधशाला का ही अपभ्रंस शब्द है। पोसाल में ये लोग पहले बालकों को पढ़ाने का कार्य करते थे और आज भी कहीं कहीं पढाने का कार्य करते हैं। जैनों मे जहाँ इन लोगों की पोसाल है वहाँ लागा भी लगा हुआ रहता है। इनमे घरबारी और बिना घरबारी ये दो दल हैं। बिना घरबारी की नागी-पोसाल कहाती है। पेट भराई न होने के कारण इन लोगों में अब कोई दवा-दारू का, कोई धीर-धार का, कोई खेती-बाड़ी का और कोई व्यापारी लाइन या नौकरी का व्यवसाय (धँधा) भी करने लग गये हैं। भिन्न-भिन्न व्यवसायी होने पर भी इन लोगोंने अभी जैनधर्म को छोड़ा नहीं है। अगर इस जाति को वर्त्तमान जैनसंघ अपना कर सहायता देवे तो ये लोग दूर-दूर प्रदेशों में जा कर अपने उपदेश-बल से जैनशासन की सेवा का अच्छा लाभ ले सकते हैं।

कुलगुरुज्ञाति मे आजकल जो पठित लोग हैं उनका कहना है कि शास्त्रों में जिन जैनब्राह्मणों का उल्लेख मिलता है उन्हीं की वंश परंपरागत कुलगुरु ज्ञाति है और एक व्रत संस्कार को छोड़ कर शेष संस्कार कराने का अधिकार इसी ज्ञाति को है।

इस कथन का उचित विचार कर लेना भी अस्थान नहीं है। श्रीऋषभदेव प्रभु के ज्येष्ठ पुत्र भरतचक्रवर्तीने जैनब्राह्मणों की स्थापना की, उनकी पहिचान के लिये परीक्षा पूर्वक काकनीरत्न से यज्ञोपवित के रूप में ज्ञान-दर्शन-चारित्रमय तीन रेखाओं के चिन्ह किये और उनके अध्ययन अध्यापन के लिये श्रीआदिनाथोपदिष्ट ससारदर्शन, सस्थापनपरामर्श, तत्त्वबोध, विद्याप्रबोध इन चार आर्यवेदों की रचना की ऐसा जैनशास्त्रकारों का मन्तव्य है। जैनग्रन्थकारोंने आगे चल कर यह भी लिखा है कि-श्रीसुविधिनाथस्वामी के मोक्ष गये बाद सघ का विच्छेद हुआ, असंयति-पूजा चालु हुइ और जो जैनब्राह्मण थे वे असयमभाव और विषय-पिपासा मे पड कर मिथ्यात्वी बन गये। उन्होंने आर्य वेदों का परिवर्त्तन करके अपनी विषयपिपासा की पूर्त्ति के लिये ऋगुवेद, यजुर्वेद, शामवेद, अथर्ववेद ये चार मिथ्यावेद बनाये। उनमे कपोलकल्पित कई बातें लिखी और उनको अपौरुपेय (ईश्वररचित) बतलाया। इतना नहीं—

येऽत्र निप्राय गोस्वर्णभूमिशय्यासनभोजनपानादिक वितरन्ति, तेषा पितरस्तत्सर्वं स्वर्गे प्राप्नुवन्ति, तृप्तास्ते पितर स्वस्वपुत्रादिकमाशिषा वर्द्धयन्ति। यतो हि ब्राह्मणा एव भूदेवा सष्टार सन्तीत्यादिकल्पितग्रन्थै सकल जगच्चे मोहयामासु। क्रमशश्चैप आर्हतो धर्मो भगवतो धर्मनाथस्य कादाचित्कमुदय लभमानो बाहुल्येन कार्श्य-

१। कल्पसूत्रार्थप्रबोधिनी, पृष्ठ-२५४.

—जो लोग यहाँ पर ब्राह्मणों को गोदान, भूमिदान, स्वर्ण-दान, शय्या, आसन, भोजन, पान, कन्या आदि देते हैं उनको स्वर्ग में वही सब मिलता है। पितरों को जो सन्तुष्ट करते हैं वे अपने पुत्र परिवार को अच्छी आशीष देते हैं–जिससे पुत्रादि समृद्ध बनते और सुखी रहते हैं। ब्राह्मण ही पृथ्वी के देव और स्रष्टा हैं इत्यादि कल्पित विधानों के ग्रन्थ बना कर उन ब्राह्मणोंने ससारवासी लोगों को अपने चगुल मे फँसाया। क्रमश श्रीधर्मनाथस्वामी के शासन पर्यन्त कभी आर्हद्धर्म का उदय और कभी अधिक अस्त हुआ। इस उदयास्त में उन विषय-पिपासु ब्राह्मणोंने कल्पनामय मिथ्याभाव की इमारत मजबूत की।

उत्तराध्ययन, कल्पसूत्र, विशेषावश्यक, आदिनाथचरित्र, आदि प्राचीन अर्वाचीन ग्रन्थों के टीकाकार महर्षियोंने यही हकीगत स्पष्टरूप से लिखी है। इस कथन से यह बात निर्विवाद सिद्ध है कि–उन जैनब्राह्मणों का श्रीसुविधिनाथ के मोक्ष गये बाद विच्छेद हो गया या वे मिथ्यात्वी बन गये। ऐसी परिस्थिति मे कुलगुरु-ज्ञाति उन जैन ब्राह्मणों की वशपरम्परागत किस प्रकार मानी जा सकती है ?। इसलिये जैनब्राह्मणों की वश-परम्परागत ही कुलगुरु ज्ञाति है ऐसी मान्यता कल्पना मात्र है।

अन्तिम ... श्रीमहावीर भगवान के चन्द्र-सूर्य-

दर्शनाधिकार में भी गृहमेधी या कुलगुरु शब्द का प्रयोग किया गया है। वह जैनब्राह्मण का बोधक नहीं है, किन्तु उस समय मे जैनधर्म पालन करनेवाले कुलों में से एक नियत किये हुए श्रेष्ठ–पुरुष का बोधक है। अत कुलगुरु शब्द क अर्थ कुल में श्रेष्ठ पुरुष मान लेने में किसी तरह की आपत्ति नहीं है। आज भी कई जगह विवाहादि सस्कार जैनमहाज करा रहे हैं, अगर व्रत सस्कार के बिना शेष सस्कार कराने का कुलगुरु ज्ञाति को ही अधिकार होता तो जैनमहाजन क्यों कराते। जब तक कोई वास्तविक प्रमाण न मिल जाय तब तक वर्त्तमान कुलगुरु–ज्ञाति को उन श्रेष्ठ–पुरुषों के वशज नहीं माने जा सकते। इस ज्ञाति की उत्पत्ति के विषय में गुजराती–अचलगच्छीयबृहत्पट्टावली में लिखा है कि—

भीनमाल (मारवाड) के राजा भाणसिंहने जैन होने के बाद विक्रम स० ७७५ में सोमप्रभाचार्य के उपदेश से सिद्धाचल और गिरनार का भारी सघ निकाला। उसमें आचार्य–सोमप्रभसूरि और उदयप्रभसूरि अपने–अपने साधु-समुदाय के साथ थे। सघ सह यात्रा करके राजा भाणसिंह वापस भीनमाल आया। राजा के सघवीपद का तिलक निकालने के विषय मे सोमप्रभ और उदयप्रभ दोनों आचार्यों के बीच हकदारी का झगड़ा हो गया। उसको मिटाने के लिये चोरासी गच्छ के आचार्योंने एकत्र हो कर वर्द्धमानपुर में ऐसा निर्णय किया कि—

" कोई आचार्य किसीके श्रावक के उसके परम्परागत कुलगुरु की आज्ञा के बिना संघवीपद का तिलक, व्रतोच्चार, दीक्षा आदि नहीं करे करावे। श्रावक को हरएक धर्मकार्य अपने परम्परागत कुलगुरु के पास या उनकी आज्ञा से करना चाहिये। गुरु दूर देशान्तर में हों तो उनको बुला या उनकी आज्ञा मंगा कर संघवी-तिलकादि कार्य करना चाहिये। " इस मतलब का लेख करके उस पर नागेन्द्रगच्छीय-सोमप्रभसूरि, उपकेशगच्छीय-सिद्धसूरि, निवृत्तिगच्छीय-महेन्द्रसूरि, विद्याधरगच्छीय-हरियानन्दसूरि ब्रह्माणगच्छीय-जज्जगसूरि, षंडेरकगच्छीय-ईश्वरसूरि, और बृहद्गच्छीय-उदयप्रभसूरि आदि चौराशी गच्छ के नायकोंने अपनी-अपनी सहियाँ की और भाणसिंहराजा की साक्षी कराई। यह निर्णय विक्रम सं० ७७५ चैत्रसुदि ७ के दिन किया गया।

इस उल्लेख से साफ जाहिर होता है कि-गच्छनायकों की पारस्परिक मोह ममता से भीनमाल (मारवाड) में उक्त समय मे कुलगुरु की उत्पत्ति हुई। कालान्तर में वे शिथिलाचारी असंयमी हुए और उन्होंने गाड़ी, वाडी, लाडी से प्रेम लगाया। आजीविका के लिये उन्होंने अपने-अपने श्रावकों का गोत्र घटवार करके उनकी वंशावली बांचने और लिखने का धन्धा करना शुरू किया। उससे भी जब पूरा निर्वाह न होने लगा तब उसके साथ-साथ वैद्यक, ज्योतिष, निशाल, नोकरी, खेती आदि का व्यवसाय करना आरम्भ किया, जैसा कि-आज

फल इनमें दिखाई देता है। इससे यह निर्विवाद सिद्ध है कि गाढी, षाढी, लाडी के प्रेमी यतियों मे से कुलगुरु ज्ञाति बनी है। परन्तु यह ज्ञाति है जैनधर्म पालन करनेवाली। अभी तक इसमें अजैनत्व नहीं है। जैनविधि से जैनों का संस्कार कर्म कराने का कार्य इस ज्ञाति से लिया जाय तो बहुत ही अच्छा है।

४३ प्रश्न—मक्खन निकलते ही छाछ मे रख कर काम में लिया जा सकता है या नहीं ?।

उत्तर—मक्खन चार महाविगयों में से एक है, जैनों के लिये उसका परिभोग निषिद्ध है, इसलिये जहाँ तक चल सके वहाँ तक इसको नहीं वापरना अच्छा है। यह आलस्य और उन्माद का वर्द्धक है। यह चाहे दही से निकला हो चाहे दूध से, परन्तु शास्त्र व धर्मदृष्टि से त्याज्य ही है। योगशास्त्र में लिखा है कि—

अन्तर्मुहूर्त्तात्परत , सुसूक्ष्मा जन्तुराशय. ।
यत्र मूर्छन्ति तन्नाऽद्य, नवनीत विवेकि[illegible] १ ॥

—छाछ से [illegible]
अनेक [illegible]
खाना ठीक नहीं
तो जन्तुजात से
दो घडी में
है। कारण-विशेष

लेने की आवश्यकता हो तो उसको तक में रख कर अन्तर्मुहूर्त्त के अन्दर काम मे लेना चाहिये । बाह्य-परिभोग के लिये तक में सुरक्षित मक्खन का काल साधु के लिये अन्तर्मुहूर्त्त से अधिक भी है । वेदकल्पसूत्र में लिखा है कि—

नो कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीएण वा पोरिसिएण तेलेण वा घएण वा नवणीएण वा वसाएण वा गायाइ अब्भंगेत्तए वा मक्खेत्तए वा णणत्थ गाढागाढे रोगायके ।

—साधु अथवा साध्वी को प्रथम प्रहर के लाये हुए पिछले प्रहर तक तेल, घृत, मक्खन या चर्बी शरीर से एक वार अथवा वार-वार लगाना नहीं कल्पता । इतना विशेष है कि अत्यन्त रोगादि कारण मे लगाना कल्पता है ।

प्रथम प्रहर का लाया मक्खन तीसरे प्रहर तक शरीर से लगाना उक्त सूत्र से जाहिर होता है, पर वह गाढ-कारण में बाह्यपरिभोग के लिये काम आ सकता है, खाने के काम में नहीं । मतलब यह है कि छाछ मे सुरक्षित मक्खन को कारण विशेष की उपस्थिति मे शरीर पर लगाने मे सैद्धान्तिक कोई विरोध नहीं है, परन्तु कारण में निरुपाय खाने मे तो अन्तर्मुहूर्त्त के अन्दर का ही काम मे आ सकता है । चल सके वहाँ तक मक्खन नहीं खाना अच्छा है ।

४४ प्रश्न—मत्रों में सब से अधिक महिमावाला मंत्र कौनसा है ? ।

जो आत्मविश्वास से सोते या जागते, बैठते या उठते, फिरते या स्खलना पाते हुए, इस महामन्त्र का जाप करते हैं उनके भय अलग होते हैं और वे सब तरह से सुखानुभव करते हैं।

४५ प्रश्न—सोडा-लेमीनेट या दूध-तक्र मिश्रित मशीन का बना हुआ बर्फ भक्ष्य है या अभक्ष्य?।

उत्तर—अग्नि, अगालित-जल और त्रसकायिक अनेक जीवों की हिंसक क्रिया से मशीन का बर्फ बनता है। उसके बनानेवाले लोग भी उपयोग-शून्य होते हैं और मशीन की निकली हुई भाफ में सैंकडों जन्तुओं का घमसान होता है। इसलिये धार्मिक दृष्टि से बर्फ अभक्ष्य और अग्राह्य समझना चाहिये। बर्फ के खाने से धर्म, बुद्धि, स्वास्थ्य और सदाचार को भारी हरक्त पहुचती है। कारण-विशेष की बात अलग है।

४६ प्रश्न—द्विदल किसको कहना, वह अभक्ष्य क्यों?।

उत्तर—दो फाड बराबर होनेवाला मूग, चना, चवला, उडद, मोंठ, आदि धान्य दही-छास में सयोजित होन पर द्विदल, विदल या कठोल कहाता है और उसमें जीवोत्पत्ति होती है, इसीसे वह अभक्ष्य है। उपदेशप्रासाद के आठवें स्तम्भ के ११८ वें व्याख्यान में लिखा है कि—

जइ मुग्गमासमाइ, विदल कचम्मि गोरसे पडइ।
ता तस्स जीवुप्पत्ति, भणति दहिए वि दुदिणोवरिं ॥ १ ॥

—मूग, उडद, आदि दो दलवाला धान्य जो कच्चे (बिना गर्म किये) दही छास में मिलाया जावे तो उसमें जीवोत्पत्ति होती है। दो दिन के उपरान्त के दही मे भी यही बात सम- झना चाहिये। पर शास्त्रकार भी कहते हैं कि—

गोरस माषमध्ये तु, मुद्गादिस्तु तथैव च।
भक्ष्यमाण भवेन्नून, मांसतुल्य च सर्वदा ॥ १ ॥

—' उडद, मूग, आदि गोरस में मिला कर खाने से वह सदा मांस-भक्षण के समान होता है। ' इसी प्रकार का उल्लेख श्राद्धविधि, श्राद्धप्रतिक्रमणवृत्ति, धर्मसंग्रह, आदि ग्रन्थों मे भी पाया जाता है। जिससे निर्विवाद सिद्ध है कि–द्विदल अभक्ष्य और विवेकियों के लिये त्याज्य है।

द्विदलान्न को गर्म किया, दही छास को गर्म नहीं किया। तथा दही छास को गर्म किया, द्विदलान्न को गर्म नहीं किया। इनका परस्पर मिश्रण होना अभक्ष्य है। बडे या छोटे जीमन- वारों मे कच्चे गोरस मे बुकदीखाना, पकोडे, पकोडी डाल कर रायता और चने के आटे (वेसन) की कढी बनाना भी अभक्ष्य है। द्विदलान्न से खरटित कुड़छी या चम्मच रायता में, रायता से खरटित कुडछी या चम्मच दाल मे डालना और दाल से खरटित भाजन मे गोरस और रायता, गोरस–रायता से खरटित (भरे हुए) भाजन में द्विदलान्न लेकर खाना भी

अभक्ष्य है। विवेकशील पुरुष-स्त्रियों को अभक्ष्य का भक्षण करना छोड़ देना चाहिये।

१ बटवृक्ष के फल, २ पीपल के फल, ३ पिलखण के फल, ४ कठुम्बर के फल, ५ गूलर के फल, ६ मदिरा, ७ मांस, ८ मधु, ९ मक्खन, १० रात्रिभोजन, ११ द्विदल, १२ बरफ, १३ विष, १४ ओले, १५ मिट्टी, १६ बहुबीज-फल, १७ आचार (अथाना), १८ बैंगन, १९ तुच्छ फल, २० अज्ञातफल, २१ चलितरस और २२ अनन्तकाय, शास्त्रकारोंने ये २२ अभक्ष्य बतलाये हैं जो त्याग करने योग्य जानना चाहिये। अजैन-ग्रन्थकार भी लिखते हैं कि—

यस्मिन् गृहे सदा नित्यं, मूलकं पाच्यते जनैः।
श्मशानतुल्यं तद् वेश्म, पितृभिः परिवर्जितम् ॥ १ ॥

मूलकेन समं चान्नं, यस्तु भुंक्ते नरोऽधमः।
तस्य शुद्धिर्न विद्यते, चान्द्रायणशतैरपि ॥ २ ॥

भुक्तं हालाहलं तेन, कृतं चाभक्ष्यभक्षणम्।
वृन्ताकभक्षणं चापि, नरो याति च रौरवम् ॥ ३ ॥

संग्रामेण यत्पापं, अग्निना भस्मसात्कृते।
तत्पापं जायते तस्य, मधुबिन्दुप्रभक्षणात् ॥ ४ ॥

—जिसके घर में हमेशा लोगों के द्वारा मूलों का शाग बनाया जाता है वह घर मशान के समान है, उसको पितर

भी छोड देते हैं। मूला के शाग के साथ जो अन्न खाता है वह नराधम है, उसकी शुद्धि सैकडों चान्द्रायण तप करने से भी नहीं होती। जिसने अभक्ष्य भक्षण किया उसने कालकूट विष-पान किया और जो बेंगन का शाग खाता है वह रौरव नरक मे जाता है-(शिवपुराण) आग लगा कर जलाने या युद्ध करने से जो पाप होता है उतना पाप मधु का एक बिन्दु खानेवाले को लगता है-(महाभारत)

४७ प्रश्न—बडी कन्याएँ कुमारपन मे रजस्वला हो घर में कामकाज व भोजन बनाती हैं यह प्रथा क्या दोष कारक नहीं?।

उत्तर—मारवाड़, मेवाड, आदि देशों में यह प्रथा प्रच-लित है पर इसमें सारा निर्विवेक कन्याओं के मातापिता या पालकलोगों का है जो कन्याओं को इस विषय की न शिक्षा देते हैं और न घर के कामकाज करने की रोक-टोंक करते है। शास्त्रानुसार रजस्वला को घर का कोई काम नहीं करना चाहिये-चाहे वह कुमारी कन्या हो या विवाहिता स्त्री। साधु-साध्वी अपने उपदेशों के द्वारा इस विषय का हरवक्त आन्दो-लन किया करते हैं, लेकिन अज्ञानी लोग अपनी मूढतामय प्रथा को नहीं छोड़ते। विक्रमाब्द १८६५ की 'ऋतुवती सज्झाय' में कहा है कि—

पहले दहाडे चंडालि कही रे, ब्रह्मघातक बीजे।
धोबण त्रीजे चोथे दिवसे रे, शुद्ध नारी वदीजे ॥५५॥

—रजस्वला स्त्री प्रथम दिन चंडालिन, द्वितीय दिन ब्रह्म घातिन, तृतीय दिन धोबिन के सदृश मानी गई है और चौथे दिन न्हाय धोये बाद शुद्ध होती है। इसलिये गृहाचार के पालन के वास्ते रजस्वला स्त्रियों को घर सम्बन्धी कोई भी कार्य तीन दिन तक नहीं करना और किसी वस्तु से नहीं अड़ना चाहिये।

भूति (मारवाड़) सं० १९९६ श्रावणकृष्णा ७

४८ प्रश्न—जैनतीर्थों की विकट समस्या अपने सामने है तो क्या समाज में ऐसा कोई समर्थ आचार्य या अधिष्ठायक नहीं जो पूर्वकाल के समान अपने सामर्थ्य से उस समस्या को हल कर सके ?।

उत्तर—आज समाज में केवल आरम्भशूर लोग हैं, पर उनमें निर्वाह शक्ति बिलकुल नहीं है। परस्पर की फूटने उनकी सारी शक्ति नष्ट कर दी है। समाजनेता अपने वाह-वाह के प्रलोभन में मस्त हैं। क्या साधु क्या श्रावक सभी वाह-वाह के उपासक बने हुए हैं। उनमें किसीने सूरिचक्रवर्त्ती, सूरिसम्राट्, किसीने मरुधरकल्पतरु, किसीने योगीन्द्रचूडामणि और किसीने आगमोद्धारक एवं तीर्थोद्धारक बनने का ढोंग मात्र दिखा रक्खा है, पर उनके पास आत्मबल या मंत्रबल की सामर्थ्य कुछ भी नहीं है। अधिष्ठायकों की मिथ्याश्रद्धा भी मान को इतनी कमजोर बना डाली है कि-वह अपने किसी

कार्य में सफल-मनोरथ नहीं होती। जहाँ दृढ विश्वास नहीं, सदाचारिता नहीं, निर्भयता और सहनशीलता नहीं उनको अधिष्ठायक भी सहायता नहीं दे सकते।

पूर्वकाल मे लोगों का अपने गुरुदेवों पर अटूट विश्वास था। गुरुदेव जो कुछ आज्ञा देते उसको अपना हित समझ कर शिरोधार्य करते, और उसके लिये अपने सर्वस्व या आत्मार्पण को भी कोई चीज नहीं समझते थे। गुरुदेव भी उन भक्तों के शासनकार्य को हरतरह कष्ट उठा करके कार्यरूप में परिणत करते थे। उसको चाहे मत्रबल समझ लिया जाय, चाहे आत्म बल। आज के जैनों में गुरुदेवों के प्रति न पूज्यभाव है और न आत्मविश्वास। वे अपनी मति कल्पना की मगरूरी में गुर्वाज्ञाओं को भी ठुकराते नहीं लजाते। सघ गुरुदेवों पर अपना रुआब डाल कर उन्हें गुलाम बनाना चाहता है। तीर्थस्थान और जिनालयों के वहिवटदार स्वय मालिक या पडा बन बैठे है। किसी कविने ठीक ही कहा है कि—

पीरके थान फकीर हि मालिक, भेरु के थान है भोपों का झडा।
रुद्र के थान मे सेवक मालिक, शूद्र के थान मे रहे निगुंडा ॥
विष्णु के थान मे ब्राह्मण मालिक, रामदुवारे रहे मुछमुडा।
जैन के मदिर पोल घणी जहाँ, पचही मालिक पचही पडा ॥

पालीताणा, गिरनार, कदम्बगिरि, आदि तीर्थ-धामों में नौकर, चाकर, आदि नीचे के कार्यकरों को कुछ रकम दिलाई

जाय तभी साधु-साध्वियों को ठहरने के लिये स्थान और पीने के लिये गर्मजल मिलता है। इसके लिये पेढी के तरफ से कुछ भी व्यवस्था नहीं होती। इस प्रकार की परिस्थिति में समर्थ आचार्यादि को क्या परवाह पड़ी है कि-वे अपने सयमधर्म को बरबाद करने के लिये मत्रबल या आत्मबल का आश्रय लेवें। जब तक गुरुदेवों का उचित विनय और उनके वचनों पर विश्वास नहीं रक्खा जायगा, तब तक सामाजिक सरक्षण की ओर उनका चित्त कभी आकर्षित नहीं होगा और न समाज अपने कार्य में सफल होगा।

४९ प्रश्न—रात्रि को मन्दिर में दर्शन और जागरण करना चाहिये या नहीं ?।

उत्तर—सघपट्टक आदि ग्रन्थों से पता चलता है कि विवेक-प्रिय लोगों को जिनालय में रात्रि को दर्शन या जागरण करना अच्छा नहीं। क्योंकि रात्रि में गमनागमन करने से जीव-यतना नहीं होती और धर्मक्रिया में अयतना होना लाभकारक नहीं है। अगर दर्शन कार्य करना ही होवे तो कुछ प्रकाश (उजाला) रहते कर लेना अच्छा है। शास्त्रकारोंने उसी धर्मक्रिया को हितकर कहा है जिसमें यतना की सुरक्षा हो सके। आज भेडियाचाल के लोग अधिक हैं, उन्होंने धर्म में धमाल खड़ी कर दी है जो अवाच्छनीय और हेय समझना चाहिये। आधुनिक दर्शन या जागरण प्रथा में सुधारा होना आवश्यकीय है।

५० प्रश्न—बियासण, एकासणा आदि तप में सचित्त जलपान हो सक्ता है या नहीं ?।

उत्तर—जैनधर्म में किसी तप में कच्चा जलपान करना सर्वथा निषिद्ध है। इसलिये बियासणादि तप में गर्मजल ही पीना चाहिये, सचित्त जल नहीं। यदि गर्मजल मिलने का अभाव हो या वह प्रकृति को मान्य न हो तो त्रिफला आदि से अचित्त किया हुआ जल भी काल–प्रमाण में काम आ सक्ता है। यही बात नीविगइ, आयविल या तिविहारोपवास में समझना चाहिये। जिसको अदरख आदि कन्द भक्षण की आदत हो और वह उसको छोड़ने में असमर्थ हो तो वह उस-का मिश्रित शाग बियासणा–एकासणा तप मे खा सकता है। पर उस आदत को छोड़ने की खप रखना अच्छा है। तपश्चर्या में सचित्त जलपान करना तो सर्वथा त्याज्य है।

५१ प्रश्न—विवेकविलास ग्रन्थ मानने लायक है या नहीं ?

उत्तर—'प्रात काल में जल्दी उठ कर चार या साढे चार बजे जलपान करना' इत्यादि विवेक–विलास में कई बातें जैनधर्म से विरुद्ध पाई जाती हैं। इससे मालूम होता है कि वह ग्रन्थ जैन अजैन ग्रन्थों से संग्रह किया हुआ है। अत इस ग्रन्थ का कुछ विषय ज्ञेय, कुछ हेय और कुछ उपादेय है। चार बजे रात्रि को जलपान करने की जैनशास्त्रकार बिलकुल आज्ञा नहीं देते। जो शास्त्र रात्रि–भोजन में महा–पाप बत-

लाता है वह रात्रि में जलपान करना हितकर नहीं कह सकता।

५२ प्रश्न—आज के शिक्षित परमानन्द, दरयावीलाल, आदि के विचार मानने योग्य हैं या नहीं ?।

उत्तर—शास्त्रविहीन एकपक्षीय आज की अंग्रेजी शिक्षाओं से युवकों के मगज निरंकुश और दूषित बन गये हैं। उनमें धर्मशून्यता, मानाकांक्षित्व और विचारविपरीतता, आदि दोषों का दौर-दौरा है जो उनके खुदके विचारों पर भी कुठाराघात करते हैं। आज कल उनके विचार सुधारा करने के बजाय शास्त्रीय, गच्छमर्यादा, साधु और संघसंस्था पर खुल्लमखुल्ला आक्षेप करनेवाले हैं जो द्वेष के वर्द्धक हैं। जो लोग धर्म-क्रिया या शास्त्रवचन पर विश्वास नहीं रखते, अभक्ष्य भक्षण करते और असदाचार एवं अपनी आदत के गुलाम हैं उन स्वार्थ-प्रिय लोगों के विचार सभ्यजनता को मानने लायक नहीं हैं। आवश्यकभाष्यकार फरमाते हैं कि—

> जे जिणवयणमणुतिन्ने, वयण भासति जेउ मन्नति ।
> सम्मद्दिट्ठीण तद्दंसण पि, ससारवुड्ढिकर होति ॥ १ ॥

—जो जिनवचन को विपरीत (उलटा) भाषण करते हैं और उसको जो मानते हैं, सम्यक्त्वधारियों को उनका मुख देखना भी संसारवृद्धि करनेवाला है। याने—उत्सूत्रभाषी लोगों का मुख-प्रेक्षण भी अनन्तभव भ्रमण करानेवाला होता है।

समय के परिवर्त्तन या मति–मन्दता से कोई बात समझ में न आवे तो शंकाशील नहीं होना चाहिये। समय के फेर से शास्त्रीय नियमों पर भी मलिनवासना का काट चढ जाना स्वाभाविक है, पर उससे नियमों को दूषित मान बैठना अनभिज्ञता है। हाँ यथाशक्ति हो सके तो उसका काट हटाने का प्रयत्न करना कराना अच्छा है। पर वैसा प्रयत्न करने के पहले स्वय सुधर के सुधारा करना सीखना चाहिये।

५३ प्रश्न—कौन किससे पाप को साफ करता है ?

उत्तर—जो कुसग से अलग और सत्समागम के निकट रह कर अपने विचार और आचरणों को सदाचार–मय बना लेता है वह पुरुष पापकर्म से लिप्त नहीं होता। नीतिकारोंने साफ लिखा है कि—

> विद्यातीर्थे पठितमतय साधवः सत्यतीर्थे,
> सेवातीर्थे मलिनमनसो दानतीर्थे धनाढ्य ।
> लज्जातीर्थे कुवलयदृशो योगिनो ज्ञानतीर्थे,
> नीतौ तीर्थे धरणिपतय कल्मष क्षालयन्ति ॥ १ ॥

—आत्मकल्याणकर विद्यारूप तीर्थ में विज्ञलोग, सत्यरूप तीर्थ में साधु, सेवारूप तीर्थ में मलिनबुद्धि-वाले लोग, दानरूप तीर्थ में पूजीपति, लज्जारूप तीर्थ में स्त्रियाँ, आत्मज्ञानरूपी तीर्थ में योगी और नीतिरूप

तीर्थ में राजा अपने पापों को धोकर साफ करते हैं, याने पवित्र होते हैं।

५४ प्रश्न—शारदा का पूजन-आराधन करना या नहीं? और उसका वाहन एक है या अनेक ?।

उत्तर—लोगों के मानसिक परिणामों को देख कर शास्त्रकारोंने उत्सर्ग तथा अपवाद ये दो मार्ग प्ररूपण किये हैं जो निर्दोष हैं। सम्यग्दृष्टिजीव अपवाद से विद्याप्राप्ति या उसके विकास के लिये शारदा का उचित आराधन करे तो कोई दोषापत्ति नहीं है। पूर्वकाल में अनेक आचार्योंने संस्कृतादि भाषाओं में बने हुए स्तुति स्तोत्रों के द्वारा शारदा का आराधन किया है। इससे उसकी आराधना निर्दोष जान पड़ती है। कतिपय प्रामाणिक शास्त्रकार महर्षियोंने जिनवाणी को भी शारदा मानी है और उसकी उपासनाविधि ज्ञानाराधना के समान बतलाई है।

जो लोग दृढ़ सम्यक्त्वधारी हैं और जिनका निर्ग्रन्थप्रवचन के सिवा अन्यमत पर आत्मविश्वास नहीं है उनको जिनवाणी रूप शारदा का आराधन करना चाहिये, कर्मनिर्जरा उसीके आराधन में होती है। अपवाद मार्ग उन्हीं के लिये है—जिनमें आत्मीय दृढ़-विश्वास और इच्छा-निरोध नहीं हैं।

दीपमालिका में चोपड़ा और लक्ष्मीपूजन किया जाता है वह व्यावहारिक-दृष्टि से अनुचित नहीं है। वह चाहे

दिन को की जाय चाहे रात्रि को, पर उसमें विवेक और जयणा अवश्य रखना चाहिये। क्योंकि यतना और विवेक के विना लौकिक क्रिया भी यथार्थ फल–दायक नहीं होती।

शास्त्र, स्तुति और स्तोत्रों में शारदा के अनेक नाम, अनेक वाहन और उसकी अनेक प्रकार की पूजनविधियों का पता चलता है जो विविध मानसिक भावनाओं के लिये हुए हैं। रविवर्मा के पिक्चरों मे शारदा के अलग–अलग वाहन दिखाई देते हैं वे ठीक ही हैं। जैनशास्त्रों मे शारदा का मुख्य वाहन हस माना है।

५५ प्रश्न—प्रभु की आरति उतारने का टाइम कौनसा है?

उत्तर—आरति यह सध्या समय की दीपकपूजा है। सूर्यास्त से दो घडी तक का टाइम आरति उतारने का है। हरएक क्रिया समय पर ही फलदाता होती है, अत दर्शन, पूजन, आरति, नियत टाइम पर होना अच्छा है। कार्यविशेष में अन्य टाइमों पर भी आरति उतारने की प्रथा प्रचलित है, वह यथावसर करने की है, सदा के लिये नहीं। सदा तो नियमित टाइम पर ही उतारना चाहिये।

५६ प्रश्न—जर्मन के राष्ट्रध्वज मे स्वस्तिक का चिन्ह है, जैनों मे कोई चिन्ह है या नहीं ?।

उत्तर—राष्ट्रध्वज कल्पनात्मक है, कल्पनात्मक वस्तु का

ही चिन्ह नियत किया जाता है। जैनधर्म सदा शाश्वत होने से उसको ध्वजचिन्ह की आवश्यकता नहीं है। स्वस्तिक का चिन्ह मंगल-सूचक और जैनधर्म के अनुसार चार गति के भ्रमण का निवारक है। कलकत्ता के म्युझियम में सुरक्षित सम्राट् सप्रति के सिक्कों में भी स्वस्तिक का चिन्ह और ऊपर नीचे बिंदु पाये जाते हैं। जिससे जान पड़ता है कि-यह चिन्ह विजय का सूचक है। जर्मनोंने इसी कारण को लक्ष्य में लेकर अपने राष्ट्रध्वज में स्वस्तिक का चिन्ह नियत किया मालूम होता है।

५७ प्रश्न—देवों में किसीका मुख घोड़ा, किसीका हाथी, किसीका हिरण, किसीका भैंसा, किसीका वृषभ और किसीका सूकर जैसा दिखाइ देता है तो क्या उनका मुख ऐसा ही होता है ?

उत्तर—देवों का मुख बड़ा मनोहर, आकर्षक और दर्शनीय होता है। आगमकारोंने लिखा है कि—

केसट्ठिमंसनहरोम-रुहिरवसचम्ममुत्तपुरिसेहिं ।
रहिया निम्मलदेहा, सुगंधनीसासगयलेवा ॥ १८७॥

—शुभ पुन्योदय से देवों के केश, हाड़, दाढ़ी-मूछ की वृद्धि, नख, रोम, रुधिर, चर्बी, चमड़ी, मूत, और विष्टा नहीं होते। कपूर और कस्तूरी की सुगन्ध के समान मुख का श्वास

होता है, उनके शरीर में पसीनादि मल नहीं होता। किन्तु उनके विमानध्वज, वसन, मुकुट और आसन में प्राणियों के चित्र उनकी पहिचान के लिये होते हैं। जिनवरों के कल्याणकदिवसों में इन्द्रों के साथ देवता उन-उन रूपों से आते हैं। लोगोंने उसी आधार से देवों की आकृति उसी ढग की अलग-अलग कल्पित बना ली, जो वास्तव में ठीक नहीं मानी जा सकती।

५८ प्रश्न—श्रीपूज्यों की प्रथा कब से चालु हुई ?।

उत्तर—कालदोष या स्वार्थलोलुपता से त्यागी साधुओं में बहुतमा अश विषय-पिपासु बन कर जिनालयों और उपाश्रयों को उनने अपनी जायदाद बना ली। विक्रम सवत् ४१२ में इस दलने अधिक जोश पकडा और इसने या इसके विपक्षियोंने इस दल का नाम 'चैत्यवासी' कायम किया। चैत्यवासियों के जो नेता (गुरु) थे वे 'श्रीपूज्य' नाम से कहे जाने लगे। ये लोग अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिये कहते हैं कि जगद्गुरु-श्रीविजयहीरसूरिजी भी अकबर-प्रदत्त शाही ठाठ से पालखी में बैठते थे। इनका यह कहना असत्य और अनभिज्ञता-सूचक है। हीरसौभाग्यकाव्य, हीरविजयसूरिकथाप्रबन्ध, हीरविजयसूरिरास, कृपारसकोश, लाभोदयरास, कर्मचन्द्र-चोपाई और स्वभावतीर्थमाला, आदि ग्रन्थों में ऐसा उल्लेख नहीं किया गया, इससे उक्त कथन विश्वास जनक नहीं है। विजयहीरसूरि विशुद्ध-चारित्रपालक, चैत्यवास के विरोधी और अन्तिम

रचना में वीतराग का वीतरागत्व न सचवा सके और न जीव यतना, वह रचना किस काम की ?।

६२ प्रश्न—देव क्या देवलोक की कोई चीज दे सकते हैं ?, प्रतिष्ठा में उनका आराधन क्यों करना ?

उत्तर—देवलोक की कोई चीज देना यह देव के अधिकार की बात नहीं है। देव किसी पर प्रसन्न होवे तो वह उसके भाग्यानुसार मनुष्यलोक की चीज ही लाकर देता है। कल्पसूत्र में कहा है कि—जिसका कोई स्वामी नहीं है या जो रख कर बिल्कुल भूल गया है उसी धनराशि को धनद के आज्ञाकारी देव प्रभु के पिता के घर में लाकर भरते हैं प्राप्तव्य अर्थ के सिवा देव किसीको कुछ नहीं दे सकते और न उसे वे अन्यथा कर सकते हैं। कहा भी है कि—' प्राप्तव्य मर्थं लभते मनुष्यो, देवोऽपि त लघयितु न शक्तः।'

शालिभद्र के लिये उसका देवपिता जो वसन और जेवर की भरी हुई तैंतीस पेटियाँ देवलोक से उसके मकान में सदा उतारता था वे मनुष्यलोक की ही समझना चाहिये, देवलोक की नहीं। सिर्फ लोगों को वैसा दिखाया जाता था। देवलोक या वहाँ की चीजें शाश्वत हैं, वे वहाँ की वहीं रहती हैं उनको इधर-उधर कर देने की शक्ति देवों मे नहीं है।

प्रतिष्ठा म देवों का आह्वान होता है, आराधना नहीं। जिस प्रकार प्रतिष्ठोत्सव-पत्रिकाओं के द्वारा जनता को आम

त्रण किया जाता है, उसी प्रकार पूजामन्त्रों के द्वारा देवों का भी आह्वान किया जाता है। लोकमर्यादा भी है कि घर के शुभ कार्यों के अवसर पर सगे-सम्बन्धी और इष्टमित्रों को अवश्य बुलाना चाहिये। चाहे वे आवें या न आवें, परन्तु लोकव्यवहार अवश्य पालन करने के योग्य है।

६३ प्रश्न—जिनमन्दिर कब बने ? और उनमे पूजा भणाने की रीति प्राचीन है या अर्वाचीन ?।

उत्तर—जिनमन्दिर बनाने की प्रवृत्ति बहुत प्राचीनकाल से है ऐसा इतिहासज्ञों का कहना है। जो लोग तीन हजार वर्ष से बने कहते हैं वे अनभिज्ञ और गफलत मे हैं। जैनशास्त्रकारों का कहना है कि-प्रभु श्रीऋषभदेवस्वामी के समय मे उनके पुत्र भरतचक्रवर्तीने अष्टापद-पर्वत के ऊपर जिनालय बनवा कर उसमे चोवीस जिनेश्वरों की शरीरप्रमाण प्रतिमाएँ विराजमान कीं। इससे सिद्ध होता है कि-आज से करोडों वर्ष पहले श्रीऋषभदेव के समय मे ही मन्दिरों का बनना और प्रतिमापूजा शुरू हो चुकी थी। इससे भी पहले शाश्वतजिनालयों और प्रतिमापूजा का अस्तित्व जीवाभिगमादिसूत्रों मे स्पष्ट रूप से पाया जाता है।

पहले प्रभु-प्रतिमा के आगे अवग्रह पूर्वक वाद्यादि साज से विविध-रागमय नाटक-भक्ति और अष्टद्रव्यादि से विविध प्रकार की पूजाएँ की जाती थीं, ऐसे उल्लेख अनेक जैनशास्त्रों में

पाये जाते हैं। बाद में लोगों की पारिणामिक परिस्थिति का विचार करके जैनाचार्य और विद्वान् मुनिवरोंने समयानुकूल विविध रागों मे अनेक पूजाएँ रचीं। पूजा भणाने का रिवाज तभी से चालु हुआ मालूम होता है। यह पूर्वकाल का परिवर्त्तित अनुकरण है-जिसका जन्म सम्राट् अकबर के दो या तीन शताब्दी पहले हुआ है। रागों का परिवर्त्तन होना लोकरुचि पर निर्भर है। इसलिये समय-समय पर उनका परिवर्त्तन होता रहता है लेकिन उत्तम वस्तुस्थिति का रूपक नहीं बदलता।

६४ प्रश्न—वस्तुपाल-तेजपाल की माता कुमारदेवी क्या बालविधवा थी? और ओसवाल आदि जातियों मे दशा-बीसा या भेद क्या वस्तुपाल-तेजपाल से पड़ा है?।

उत्तर—कुमारदेवी के बालविधवा होने मे जैनग्रन्थों के लेखकों मे मतान्तर है। सभी लेखक इस विषय में एकमत नहीं है। तपागच्छीय-श्रीजयचन्द्रसूरि के शिष्य जिनहर्षगणिने चित्रकूट म रह कर स० १८४७ मे हर्षांङ्ककाव्य ग्रन्थ बनाया है उसमें लिखा है कि—

> अस्त्यत्रैव चरित्रेण, पवित्रेण सता मत.।
> आभूर्विभूतिभि. ख्यातो, दण्डेशोऽखण्डविक्रम ॥४८॥
> समस्ति तनया तस्य, प्रशस्यति नयान्विता।
> नाम्ना कुमारदेवीति, देवीव भुवमागता ॥ ४९ ॥
> सतीमतल्लिका शील-लीलया ललितोदया।
> पद्मिनी पद्मसौरभ्य-निभृताङ्गी विचक्षणा ॥ ५० ॥

पिकीव मधुरालापा, राजहसीव सद्गतिः ।
रोहिणीव सदाचारा, या सतीव मनोहरा ॥ ५१ ॥

—एकदा आचार्य श्रीहरिभद्रसूरि पाटण के उपाश्रय में निशाध्यान मे विराजमान थे। ध्यान से आकृष्ट हो शासनदेवताने उनको कहा कि—"अपने पवित्र चरित्र से सत्पुरुषों का मान्य, अपनी विभूतियों से सर्वत्र प्रसिद्ध, असड पराक्रमी और दण्ड-नायक आभूमत्री इसी नगर मे रहता है। उसकी कुमारदेवी नामक पुत्री देवी के समान पृथ्वी पर अवतरी है। वह नीति-सपन्न, सतीशिरोमणि, शील रूप लीला से उदीयमान, पद्मिनी, पद्मसौरभसी—सुगन्ध अङ्गवाली, महा—बुद्धिशालिनी, कोकिला के समान कठवाली, राजहसी के समान चलनेवाली, रोहिणी के समान सदाचारिणी और सती के समान मनोहारिणी है। प्रात काल मे वह आपका व्याख्यान सुनने के लिये उपाश्रय में आवेगी। उसकी कूख से बड़े प्रतापी होनहार तीन पुत्र होंगे।" अस्तु, प्रात काल कुमारदेवी व्याख्यान सुनने को आई, उसके शारीरिक लक्षणों पर दृष्टिपात करके आचार्यने देवकथित सारा हाल अश्वराज को कहा। अश्वराजने कुमारदेवी से व्याह किया। क्रमश उसकी कुक्षी से मल्लदेव, वस्तुपाल और तेजपाल ये तीन पुत्र पैदा हुए।

हर्षोङ्ककाव्य के लेखानुसार कुमारदेवी का बालविधवा होना सिद्ध नहीं होता। यदि वह बालविधवा होती तो उसके लिये ' सतीमतल्लिका, शीललीलया ललितोदया, सतीव

मनोहरा' इस प्रकार के विशिष्ट विशेषण क्यों लगाये जाते ? । सभव है हर्षाङ्ककाव्यकार के समय यह प्रघोष प्रचलित न हो अथवा उन्होंने उस प्रघोष को असत्य (किम्वदन्ती-मात्र) समझ कर अपने ग्रन्थ में लिखना उचित न समझा हो। इसी प्रकार कीर्त्तिकौमुदी और सुरथोत्सव-काव्य में भी इस विषय का कुछ भी उल्लेख नहीं है ।

प्रबन्धचिन्तामणि, वस्तुपाल-तेजपालरास, वस्तुपाल-तेजपालप्रबन्ध, वालबोधमय-प्राचीनतपगच्छ-पट्टावली, खरतर गच्छपट्टावली, आदि के कर्त्ताओंने वस्तुपाल-तेजपाल का विधवाजात लिखे हैं । इससे कुमारदेवी का वालविधवा होना सिद्ध है । इस विषय में अनेक ग्रन्थों की एकवाक्यता होने से यह विषय बिलकुल अयथार्थ भी नहीं माना जा सकता। सवत् १२९८ मे वस्तुपाल का और स० १३०८ मे तेजपाल का स्वर्गवास हुआ है । उनके बाद ५३ वे वर्ष स० १३६१ में प्रबन्धचिन्तामणि ग्रन्थ परिपूर्ण हुआ है । उस निकटवर्त्ती काल मे प्रबन्धचिन्तामणि मे लिखा है कि—

कदाचिच्छ्रीमत्पत्तने भट्टारकश्रीहरिभद्रसूरिभिर्व्याख्यानावसरे कुमारदेव्यभिधाना काचिद्विधवातीवरूपवतीमुहुर्मुहुर्निरीक्ष्यमाणा स्थितस्याश्वराजमन्त्रिणश्चित्तमाचकर्ष । तद्विसर्जनानन्तर मन्त्रिणानुपृष्टा गुरव इष्टदेवतादेशादमुष्या कुक्षौ सूर्यचन्द्रमसोर्भाविनमवतार पश्यामस्तत्सामुद्रिकानि

भूयो विलोकितवन्त इति । प्रभोर्विज्ञाततत्त्वः स तामपहृत्य निजा प्रेयसीं कृतवान् । क्रमात् तस्या उदरेऽवतीर्णे तावेव ज्योतिष्केन्द्राविव वस्तुपालतेजपालाभिधानौ सचिवावभूताम् ।

—पाटन में व्याख्यान के समय हरिभद्राचार्य के द्वारा वारम्वार देखी जाती कोई अति रूपवती कुमारदेवी नामक विधवाने बैठे हुए अश्वराजमत्री के चित्त का आकर्षण किया । उसके चले जाने पर उसको वार-वार देखने का कारण अश्वराजने गुरु से पूछा । इष्टदेवता के आदेश और सामुद्रिक लक्षणों से गुरुने कहा कि-भविष्य में इसके उदर में सूर्य चन्द्र अवतार लेवेंगे । इस रहस्य को पा कर अश्वराजमत्री कुमार देवी को हर ले गया और उसको अपनी पत्नी बनाई । उसकी कुक्षी से क्रमश वस्तुपाल और तेजपाल नामक सचिव-पुत्र का जन्म हुआ जो ज्योतिष्केन्द्र के समान तेजस्वी हुए ।

श्रीविजयसेनसूरिरचित-सेनप्रश्न में कहा है कि-आसराज (अश्वराज) ने आभूसघवी की विधवा पुत्री कुमारदेवी के साथ उसकी कुक्षी से पुत्र-रत्न होंगे ऐसा हेमप्रभाचार्य के वचन से जान कर सवन्ध किया । फिर क्रमश उसकी कुक्षी मे तेजस्वी चार पुत्र और सात पुत्रियाँ उत्पन्न हुई ।

इत्यादि प्रमाणों से कुमारदेवी को बालविधवा मान लेना अनुचित नहीं है । कर्मों की गति विचित्र है । वह ऊँच को नीच और नीच को ऊच बना देती है । महाभाग्यशाली और

प्रतापी वस्तुपालतेजपाल पर निधपाजात का बल्कारोप होना वह विचित्र कर्मों की लीला समझना चाहिये। अस्तु। दसा-बीसा के विषय में जैनपट्टावली और रासकारों का कहना है कि—

१ राना वीरधवलने वस्तुपाल को मत्री पद दिया, उसके तिलक के समय प्रीतिभोजन कराने के लिये महाजनों की चौरासी ज्ञातियों को आमत्रण दिया गया। पर नगरसेठ के पीछे उसके बालपुत्र को भूल से आमत्रण नहीं दिया। उसकी विधवा माता रुदन करने लगी, उसका कारण पुत्रने पूछा। रुदन करती हुई माताने कहा-पिता का मृत्यु, तुम छोटे और घर में गरीबी का दुःख, इस वजह से वस्तुपालने अपने घर न्योता नहीं दिया। वस्तुपाल का पिता आसराज पोरवाड और माता बालविधवा श्रीमाली की है, तो भी महाजन उसके यहाँ जेले हुए हैं। तुम महाजन की सभा में जाकर कहना कि--आप महाजनपच मेरी माता को नातरा करने की आज्ञा देवें जिससे उमका जीवन सुखसे बीते। माता के कथनानुसार पुत्रने सारा हाल महाजन के सामने जाकर कह दिया। महाजनों को भारी सन्देह हुआ, उसकी माता को बुला कर पूछा। उसने कहा-यदि पुत्र के कथन में किसी तरह का सन्देह हो तो समगोत्रीया भुवनचन्द्र गुरु को पूछो, वे यथार्थ बात का खुलाशा कर देवेंगे। महाजनने उनसे भी पूछा। सब हाल सत्य-सत्य निकला और वह सर्वत्र फैल गया। जो लोग मत्री

वस्तुपाल के पक्ष में रहे वे दशा और न रहे वे वीशा कहे जाने लगे। इस प्रकार स० १२७५ में वस्तुपाल-तेजपाल से दशा-वीशा का भेद पड़ गया।

२ वस्तुपाल-तेजपालने पाटन में जीमन किया उसमें चौराशी जात के महाजनों को न्योता दिया, परतु श्रीमाली नगरसेठ के पुत्र को न्योता नहीं दिया। उसकी माताने पुत्र के द्वारा महाजनों को कहलाया कि-वस्तुपाल-तेजपाल बाल-विधवा कुमारदेवी के उदर से पैदा हुए हैं। तपास करने पर पता लगा कि बात सही है। जीमन में जो लोग जीमे वे दशा और नहीं जीमे वे वीशा कहलाये।

३ आबु के ऊपर स० १२७५ में वस्तुपाल-तेजपालने चौराशी न्याति का जीमन किया उसमें किसी कारण से भग पड़ गया। उपस्थित ज्ञातियों में से जो लोग जीम गये वे दशा और नहीं जीमे वे वीशा कहाये।

४ नारी वचन ते सामळी रे, साजन दहुदिशे जाय।
प्रधान पासे जेता रह्या रे, ते लघुशाखा कहिवाय॥

पाये लागी मत्री वीनवे रे, माजनासु जोग न थाय।
लाजे पड्या केता वाणिया रे, प्रधाननी बाह साय॥

लघुशाखा तिहाँ थापता रे, निज निज न्यात कहिवाय।
शाखा प्रशाखा प्रस्तरी रे, बीजु न किस्यु अन्याय॥

यशोमती न्यात अजुनालती रे, राख्यो न्यातनो बंध।
वृद्धशाखी ते जाणिये रे, लघु वस्तुपालथी सघ ॥

मेरुविजयकृत–वस्तुपाल–तेजपाल रास।

उपरोक्त लेखों में सभी विद्वानों का एकमत है कि— वस्तुपाल–तेजपाल विधवाजात होने से उन्हों के दिये गये जीमन में जीमनेवाले दशा और नहीं जीमनेवाले बीशा कहलाये। उस समय यह भेद खींचातानी में पड़ जाने के कारण पारस्परिक सम्बन्ध बिलकुल टूट गया था। परन्तु वर्त्तमान में इनमें परस्पर बेटी के लेन–देन का व्यवहार तो नहीं है, किन्तु भोजन व्यवहार तो बराबर प्रचलित है। दशा बीशा, लोढ़ साजन, बडे साजन और लघुशाखा, वृद्धशाखा इन उपनामों से भी इनका भाषा और संस्कृत लेखों में उल्लेख किया गया है। सोभाग्यनन्दीसूरिरचित–विमलचरित्र में लिखा है कि—

प्राग्वाटाद्या विंशतिर्विंशोपका ज्ञातयो भवन्त्यस्मात्।
दशते स्त्रीसंग्रहे मद्यादिनीचवृत्तितो दश वै ॥ ६१ ॥

—'प्राग्वाट आदि ज्ञातियाँ बीस विश्वा होती है उनमें जिन्होंने परस्त्री से सम्बन्ध किया, अथवा मद्य आदि का हल्का धन्दा किया वे दशा कहाये।' अथवा जिनका मातृ–पितृ पक्ष विशुद्ध हो या उत्तम कुल शील का हो वह बीशा और जिनका एक पक्ष शुद्ध हो या मध्यम कुल–शील का हो वह दशा कहलाता है। कुछ भी हो लेकिन वस्तुपाल–तेजपाल जैनधर्म में प्रभावक,

दानवीर और महा युद्धवीर पुरुष–रत्न हुए हैं। उन्होंने अपनी उदारता, धैर्यता और धर्मदृढ़ता से जैनों का मुख उज्वल किया है और जैनधर्म की पताका फरकाई है, इसलिये उनको धर्म वीर पुरुष कहना या मानना अनुचित नहीं है। प्रशस्य गुणोदय से मनुष्य जग–जाहेर होता है। उक्ति भी है कि–' प्राकाश्य स्वगुणोदयेन गुणिनो गच्छन्ति किं जन्मना। '

६५ प्रश्न—स्तुति और स्तव किसको कहते हैं ?।

उत्तर—तीर्थंकर आदि विशिष्ट आत्माओं के सद्भूत गुणों की प्रशंसा करना, अथवा जिनालय में प्रभुप्रतिमा या स्थापनाचार्य के आगे सामान्य से एक या विशेष रूप से दो, तीन श्लोकों से गुण कीर्तन करना स्तुति (थुई) कहाती है। वादिवेताल श्रीशान्त्याचार्य स्वरचित उत्तराध्ययनसूत्र की पाइ-टीका में लिखते हैं कि—

एग–दु–तिसिलोगा, अन्नेसिं जाव हुति सत्तेव।
देविंदत्थमाई, तेण परं थुत्तया होंति ॥ १ ॥

—एक, दो, तीन श्लोक को और अन्य आचार्यों के मत से सात श्लोकात्मक को स्तुति और इससे अधिक श्लोका-त्मक को स्तव कहते हैं। इसमें मुख्यतया तीन श्लोक तक को स्तुति और अधिक श्लोकात्मक को स्तव कहा गया है। जम्बू-द्वीपप्रज्ञप्ति, राजप्रश्नीयोपाङ्ग, आदि सूत्रों में १०८ श्लोकात्मक

को स्तव कहा है। प्रद्युम्नसूरिजी अपने विचारसारप्रकरण में साफ लिखते हैं कि—

अरिहंतदडगाईण, काउस्सग्गाण जाउ अतम्मि।
दिज्जति ता थुइओ, मणिय यवहारचुण्णिए ॥ १ ॥

—'दण्डकादिक में कायोत्सर्ग के अन्त में कहे जानेवाले प्रभुगुण प्रणामात्मक श्लोकों को व्यवहारचूर्णि में स्तुति (थुइ) कही है।' मतलब यह है कि—चैत्यवन्दन में नमुत्थुण के बाद खड़े होकर 'अरिहंतचेइयाण०, अन्नत्थ०, पूर्वक कायोत्सर्गान्त में प्रथम, 'लोगस्स०, सव्वलोए अरिहंतचेइयाण०, अन्नत्थ०' कहे बाद कायोत्सर्गान्त में द्वितीय और पुक्खरवरदीवड्ढे०, सुअस्स भगवओ०, वदणवत्तियाए०, अन्नत्थ०' कहे बाद कायोत्सर्गान्त में तृतीय श्लोक बोला जाता है उसको 'स्तुति' कहते हैं। और उवसग्गहर या अन्य स्तवन कहा जाता है उसको 'स्तव' कहते हैं। स्तुति तीन श्लोक से अधिक नहीं होती। स्तव या स्तवन का कोई नियम नहीं है वह चार, पाच, सात या अधिक श्लोकों का भी होता है।

६६ प्रश्न—प्रभु किसी को कुछ देते नहीं हे तो उनसे प्राथना क्यों की जाय ?।

उत्तर—राग-द्वेष रहित होने से प्रभु किसी पर न नाराज होते हैं, न प्रसन्न। प्राणिमात्र पर उनका समभाव रहता है। उनकी तुलना में दूसरा कोई अन्य देव नहीं आ सकता। कहा

भी है कि 'वीतरागसमो देवो, न भूतो न भविष्यति।' जिस प्रकार अग्नि अपने पास किसीको बुलाती नहीं है पर उसका आलम्बन लेनेवाले की शीतवेदना मिटती है। उसी प्रकार वीतराग का खरे जिगर से लिया हुआ आलम्बन प्रार्थियों की कर्मग्रन्थी का नाश करके उनको सुखी बनाता है। वीतराग को स्वय सहयोग देने की आवश्यकता नहीं है। अथवा प्रभु के अधिष्ठायक देवों का उनके भक्तों के तरफ हमेशा ध्यान खिंचा रहता है, वे प्रभु से की हुई प्रार्थना को हरतरह सफल बनाने में उद्यत रहते हैं। प्रभु ऋषभदेव से नमि–विनमिने प्रार्थना की, प्रभु के भक्त धरणेन्द्रने उसको परिपूर्ण की। इस विषय के समर्थक शास्त्रों में अनेक उदाहरण उपलब्ध हैं।

अगर कहा जाय कि 'लिखितमपि ललाटे प्रोज्झितुं कः समर्थः ?' ललाट में लिखे हुए लेख को मिटाने के लिये कौन समर्थ है ? । दर असल में यह सिद्धान्त पुरुषार्थ हीन लोगों का है। यह बात एकान्त नहीं है और नियति (भवितव्यता) से पुरुषार्थ बलिष्ठ माना गया है। उपाय से सब कुछ हो सकता है और यही गुण जीवन का विकास करता है। जिसमें पुरुषार्थ नहीं उसका जीवन मृत–प्राय (बेकार) है। समर्थ–विद्वान् श्रीयशोविजयोपाध्यायने द्वात्रिंशिका में लिखा है कि—

निकाचितानामपि यः, कर्मणा तपसा क्षयः।
सोऽभिप्रेत्योत्तमं योगमपूर्वकरणोदयम् ॥१॥

—कठिनतर तपस्या करने और अपूर्वकरणगुणस्थान पर आरूढ होने से निकाचित (भोग्य) कर्म रूप सैन्य को हराया जा सकता है।

कहने का मतलब यह है कि प्रभु से प्रार्थना करने और उनकी आज्ञाओं का परिपालन करने से वे भक्तों को कुछ नहीं देते, किन्तु उनके आलम्बन से भक्तों की कर्म-ग्रन्थी नाश होती है और उन्हें सुख—लाभ मिलता है। इसलिये श्रद्धा पूर्वक प्रभु से प्रार्थना (याचना) करना लाभदायक है और अनेक बहुश्रुताचार्योंने स्तुति स्तोत्रों में प्रार्थना की है।

६७ प्रश्न—तन्दुरुस्ती या शरीरपुष्टि के लिये रातभि गोये चने, प्याज, सतावरी, मक्खन और प्राणियों के चर्वी, हड्डी, अस्थि की सफेदी, पित्त तथा रुधिर मिश्रित बाजारु पेटेन्ट दवायें इस्तेमाल करने में दोष है या नहीं ?।

उत्तर—स्वास्थ्य और पुष्टि होना अपने सदाचार या अच्छे विचारों पर निर्भर है। उक्त वस्तुओं को नहीं इस्तेमाल करनेवालों में कई लोग तन्दुरुस्त और हृष्ट-पुष्ट दिखाई देते हैं। जब अभक्ष्य भक्षण में शास्त्रकारोंने महा-दोष बताया है तब वह स्वास्थ्य एव पुष्टि का कारण किस प्रकार माना जा सकता है ?। इसलिये उक्त औषधियाँ धर्मभ्रष्टता की कारण समझ कर विवेकियों को त्याग देना चाहिये। धर्मशास्त्र का तक कहना है कि—मरना अच्छा है पर धर्मभ्रष्ट

करनेवाली प्राणिजन्य पदार्थों से मिश्रित अपवित्र औषधियों का इस्तेमाल करना अच्छा नहीं है ।

आयुर्वेद में शरीर-स्वास्थ्य और पुष्टि के लिये इनके बदले अन्य ऐसी अनेक शुद्ध औषधियाँ हैं—जिनके इस्तेमाल करने से शरीर को फौरन फायदा होता है और धर्म को किसी तरह की बाधा नहीं पहुचती । अन्य विशुद्ध उपचार के न मिलने पर विवशता से कभी प्याज, सतावरी, आदि वनस्पति-जन्य वस्तुएँ और मक्खन दवा के रूप में शास्त्रोक्त विधान से खाना पड़े तो हरकत नहीं है, लेकिन प्राणिजन्य पदार्थों से मिश्रित दवाएँ बाह्य-परिभोग के सिवा काम में लेना अनुचित है। जिसके शरीर को मान्य न हो उसीके लिये रात-भींगे चने खाने का आयुर्वेद निषेध करता है, अन्य के लिये नहीं ।

६८ प्रश्न—अपवित्र चीजों का भेल्सेल वाला बाजारू घृत खाना अच्छा है या नहीं ?

उत्तर—शास्त्रों की आज्ञा है कि जिसका वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श बदल या बिगड़ जाय ऐसी रस चलित चीजों में रसजा जन्तु पैदा होते हैं और वे अभक्ष्य हो जाती हैं। उनके भक्षण से शरीर का स्वास्थ्य बिड़ता है और शास्त्राज्ञाओं का गला घुटता है । इसलिये बाजारू अपवित्र घी खाना या वापरना अच्छा नहीं है। इसके बजाय मलाई या ताजे मक्खन से घर में ही [illegible] खाना बहुत अच्छा है । साधु—

साध्वी अपने उपदेशों के द्वारा इसका काफी आन्दोलन करते रहते हैं, पर भेडियाचाल के लोभी मनुष्यों की निद्रा नहीं उड़ती। जिनालयों में भी अपवित्र घी काम में लेना दोषजनक है।

६९ प्रश्न—देवी-देवता प्रभु के उत्सव या समवसरण में गेंडा, भैंसा, आदि वाहनों पर चढ़ कर आते हैं तो क्या देवलोक में पशु होते हैं ?।

उत्तर—देवलोक में गेंडा, भैंसा, घोड़ा, हाथी, आदि पशु नहीं होते, किन्तु उन-उन नामवाले देव होते हैं जो प्रभु के उत्सवादि अवसरों पर वैसे पशुओं का उत्तरवैक्रिय क्रिया से रूप धारण करके वाहनों का काम देते हैं। उत्सवादि कार्य निपट जाने बाद फिर अपने मूल स्वरूप को धारण कर लेते हैं, इन देवों का यही अधिकार है।

इसी प्रकार देव देवियों का सौन्दर्य मनुष्यों से अत्यन्त अधिक है। उनके मनुष्यों के समान दो ही हाथ होते हैं। परन्तु वे यथावसर अपनी रुचि के अनुसार उत्तरवैक्रिय शरीराकृति बनाते समय कोई दो, कोई चार, कोई आठ हाथ बना लेते हैं। सभव है उसी आधार से शास्त्रकारोंने उनकी आकृति में हाथ होना लिखे हैं।

७० प्रश्न—मयणरेहा और कलावती, आदिने कर्मदोष से जगल में पुत्र प्रसव किया, वहाँ नाल किसने काटा ? या अपने हाथों से काटा होगा ?।

उत्तर—जो स्त्रियाँ अपने शीलधर्म की हर तरह से रक्षा करती हैं और उसीको अपना सर्वस्व समझती हैं उनकी रक्षा देवी, देवता और उनका सुकृतकर्म करता है। उन्हीं से उनके शरीर की सुरक्षा होती है। शील की महिमा अगाध है, उसके लिये जंगल में मंगल संयोग उपस्थित होते हैं। उपदेशप्रासाद-कार लिखते हैं कि—

अमराः किङ्करायन्ते, सिद्धयः सहसंगताः।
समीपस्थायिनी संपच्छीलालङ्कारशालिनाम् ॥ १ ॥

—शीलरूप आभूषणों से शोभित पुरुष-स्त्रियों के देवता सेवक बनते हैं, सभी सिद्धियाँ साथ रहती हैं और संपत्तियाँ कभी उनके निकट से अलग नहीं जातीं।

कहने का तात्पर्य यह है कि—सुशील स्त्रियों की रक्षा आपत्तिकाल में उनका शील ही करता है। इसलिये मयणरेहा, कलावती, आदि का जंगल में पुत्र प्रसव के समय नालच्छेदादि कर्म उनके अखंड शील से आकर्षित हो कर देवियोंने किया था, उन्होंने स्वयं अपने हाथ से नहीं।

७१ प्रश्न—रोल, चाल, धन्धा, आदि पाप तो सदा होता ही रहता है फिर प्रतिक्रमण से क्या लाभ? और प्रतिक्रमण शब्द का क्या अर्थ है?।

उत्तर—दुनियादारी के व्यवहार को रोकने के लिये

प्रतिक्रमण नहीं किया जाता, किन्तु सामान्य विशेष रूप से की हुई व्रतों की सीमा का उल्लंघन होने से लगे हुए अतिचारादि दोषों की आलोचना, अथवा करने योग्य कार्य को न करने, न करने योग्य कार्य को करने, जिनवचन पर विश्वास न रखने और सूत्र-विरुद्ध भाषण करने से जो पाप लगा हो उसको हटाने के लिये प्रतिक्रमण किया जाता है। जो लोग कहते हैं कि 'दिनभर व्यापारादि पापधन्धा करते रहनेवाले लोगों की प्रतिक्रमणादि क्रिया बेकार है। उनको इस धर्मक्रिया का फल कुछ नहीं मिलता' वे लोग भारी गफलत में हैं या अज्ञ हैं। 'जवाहिर-व्याख्यान' में यदि ऐसा लिखा हो तो उसको उत्सूत्र-भाषण ही समझना चाहिये। सूत्रों से पता चलता है कि धार्मिक क्रियाओं के आलम्बन से महा-हत्या करनेवाले पापियों का भी निस्तार हुआ है। कहा भी है कि—

> तीव्रेण धर्मरागेण, अघ दुष्टमपि स्फुटम्।
> चिलातीपुत्रवत्सद्य, क्षय कुर्वन्ति देहिनाम्॥ १॥

—धर्म के अत्यन्त अनुराग (प्रेम) से मनुष्य चिलाती-पुत्र के समान दुष्ट पापकर्मों का शीघ्र नाश करते हैं। जिस प्रकार अन्न के बिना शरीर, नेत्र के बिना मुख, न्याय के बिना राजा, नमक के बिना भोजन, मूल के बिना झाड़, शिरोऽस्त्र के बिना सुभट, और चन्द्र के बिना रात शोभा नहीं देती, उसी प्रकार धर्मक्रिया के बिना मनुष्य का जीवन सफल नहीं होता।

अशुद्ध उच्चार और शुक-पाठ के समान प्रतिक्रमण करते रहने से कोई फायदा नहीं है ऐसा जो लोग कहते हैं वे अज्ञ या क्रिया-विहीन हैं। जिस प्रकार वासी-पूरी रोटी और तुच्छ-धान्य का भोजन करने से भी क्षुधा शान्त होती है, उसी प्रकार शुद्ध-उच्चारण और अर्थ-ज्ञान के विना भी प्रतिक्रमण-क्रिया करने से कायसम्वर-रूप सामान्य शुभ-लाभ मिलता ही है। देखो शास्त्रकार कहते हैं कि—

'धम्मस्स किं फलं ? भणितं, अव्यक्तस्य तु सामाइयस्स रज्जाति फलं' (कल्पचूर्णि) 'अव्यक्त-सामायिकस्य किं फलम् ?, तेऽवे राज्यादि' (कल्पदीपिका) 'अव्यक्त-सामायिकस्य किं फलम् ?, ततो गुरुभिः प्रोक्तं राज्यादिकम्' (कल्पसूत्र-कल्पलता)

—सम्राट्-सम्प्रति-भगवन्! अव्यक्त सामायिक का फल क्या है ?, आर्यसुहस्ती-अव्यक्त सामायिक का फल राज्यादि की प्राप्ति है।

इस संवाद से साफ जान पड़ता है कि अर्थज्ञान और शुद्धोच्चारण के विना भी सामायिक आदि धर्मक्रियाओं का सामान्य से राज्यादि प्राप्तिरूप फल अवश्य मिलता है। आगमकारोंने भी फरमाया है कि—

अविहिकया वरमकयं, उस्सुत्तवयणं भणंति सव्वन्नु।
पायच्छित्तं अकए गुरुअं, वितहं कए लहुअं ॥ १ ॥

—'अविधि से करने की अपेक्षा न करना अच्छा' ऐसा कहनेवाले उत्सूत्र-भाषी हैं। क्यों कि क्रिया न करनेवाले को गुरु प्रायश्चित्त और अविधि से करनेवाले को लघुप्रायश्चित्त आता है।' प्रतिक्रमणसूत्रों को शुद्ध सीखने या शुद्ध करने और उसका अर्थज्ञान करने की यथाशक्ति खप (प्रयत्न) करना बहुत अच्छा है। यदि वैसा न बन सके तो चलती प्रवृत्ति पर विश्वास रख कर प्रतिक्रमणादि क्रिया करते रहना चाहिये। वह भी निष्फल नहीं है उसमें भी लाभ अवश्य है। शिथिलाचार-प्रिय या क्रियाशून्य लोगों के भ्रम-जाल में नहीं पड़ना चाहिये। अजैनों में प्रचलित नमाज, प्रार्थना, भजन, सध्यावन्दन, आदि की अपेक्षा प्रतिक्रमण-क्रिया का दर्जा बहुत ऊंचा है, क्यों कि यह सर्वज्ञोक्त और आगमविहित है। इसलिये इसमें जितनी श्रद्धा, शान्ति और विवेकशीलता रक्खी जाती है उतना ही अधिक लाभ मिलता है और आत्म-शुद्धि होती है। षडावश्यक रूप प्रतिक्रमण दिगम्बरजैन भी मानते है, लेकिन उनमें इसका विधि-विधान केवल स्वाध्याय रूप में है, श्वेताम्बरों के समान नहीं।

प्रति का अर्थ है उलटा और क्रमण का अर्थ है जाना, दोनों के सयोग से प्रतिक्रमण शब्द बना है। इसका सक्षिप्त फलितार्थ शास्त्रों में इस प्रकार किया है—

स्वस्थानाद् यत्परस्थान, प्रमादस्य वशाद्गत ।
तत्रैव क्रमण भूय', प्रतिक्रमणमुच्यते ॥ १ ॥

—प्रमाद के वश से अपने स्थान से पर-स्थान पर गई हुई (दुनियादारी के तरफ झुकी हुई) आत्मा को फिर निज स्थान पर लाना, अथवा सवरभाव से हट कर राग या द्वेष में पडी हुई आत्मा को फिर सवरभाव मे कायम करना, अथवा अशुभ प्रपच जाल में फँसी हुई आत्मा को फिर शुभ योग में स्थापन करना, याने अतीत काल के पापों को निन्दा के द्वारा, वर्तमान काल के पापों को सवर के द्वारा और भविष्य काल के पापों को प्रत्याख्यान के द्वारा अलग करना उसको 'प्रतिक्रमण' कहते हैं। कहने का आशय यह है कि जो पाप हो चुके हैं वे पश्चात्ताप करने, हो रहे है उनको कम करने की शुभ-भावना करने और होनेवाले पापों को यथाशक्ति कम करने की प्रतिज्ञा लेने से पाप हलके पडते हैं—पापकर्म का बन्ध कम पडता है। प्रतिक्रमण का यही अर्थ समझना चाहिये और इसीसे शास्त्रकारोंने प्रतिक्रमण—क्रिया करने की आज्ञा दी है जो सहेतुक है।

७२ प्रश्न—प्रतिक्रमण करके रात्रिको दवा, चूर्ण, गुटिका, अवलेह, पाक, आसव और मलोत्सर्ग के लिये या आदत के वश से धूम्रपान और दुग्धपान आदि को इस्तेमाल कर सकते हैं या नहीं?

उत्तर—दैवसिक प्रतिक्रमण करके उसमें जिसने चोविहार का प्रत्याख्यान किया हो वह तो दवा आदि कोई वस्तु रात्रि में नहीं ले सकता। तिविहार के प्रत्याख्यान में यथाप्रमाण

जल–पान, और दुविहार के प्रत्याख्यान में सूंठ, हरड़े, त्रिफला, लवंग, इलायची, चूर्ण, सुपारी, तबोल (पान), दवा, आसवादि ले सकता है। लेकिन दुग्धपान नहीं कर सकता और न पाक, अवलेह, आदि ले सकता है। जो मनुष्य अपनी आदत का गुलाम है और प्रतिक्रमण करना चाहता है उसको अपनी आदत की पूर्ति के लिये प्रतिक्रमण में प्रत्याख्यान नहीं लेना चाहिये, शिर्फ प्रतिक्रमण रूप सवर कर लेना चाहिये। क्यों कि न करने की अपेक्षा प्रतिक्रमण करना अच्छा है। मुख्यवृत्त्या श्रावक को चोविहार प्रत्याख्यान ही करना चाहिये। पर उसकी शक्ति न हो तो तिविहार या दुविहार प्रत्याख्यान तो अवश्यमेव कर लेना चाहिये। बिना प्रत्याख्यान किये रहना अच्छा नहीं है। इसी प्रकार प्रतिक्रमण करते करते लघुशंका या वड़ीशंका की हाजत हो जाय तो पौषध–विधि में लिखी विधि के अनुसार हाजत को रफा करके गर्मजल से हाथ या पैरों को धो लेना चाहिये।

७३ प्रश्न—वीर–प्रभु का गर्भापहार, गर्भसक्रमण, विवाह दिगम्बर न मान कर श्वेताम्बरों की दिल्लगी उड़ाते हैं और कहते हैं कि श्वेताम्बर–शास्त्रों में महावीरने मासाहार किया लिखा है, यह कैसा ?।

उत्तर—जो मत ईर्ष्या–द्वेष के लिये हुए पैदा होता है वह अपना मनमाना मन्तव्य कायम करने के लिये प्रचलित

प्रथा में फेर–फार करता ही है। दिगम्बर–मत श्वेताम्बरजैनों में से ईर्ष्याभाव के लिये हुए निकला है। इसने सर्वमान्य सैद्धान्तिक सत्य बातों का परिवर्त्तन करके केवल कपोल–कल्पना का पुल बाँधा है। प्रभु का गर्भापहार, गर्भ–सक्रमण और विवाहित होना गणधरादि समर्थ बहुश्रुताचार्योंने माना है और आगमों में प्रतिपादन किया है जो कभी असत्य नहीं हो सकता। मिथ्यात्वियों की मति विपरीत होती है, वे सत्य वस्तु को न समझ कर हास्य करते हुए हास्य के पात्र बनते हैं। जो महापुरुष अहिंसा का कट्टर पुजारी, और प्राणिमात्र को अपना कर सारे विश्व में शान्ति फैलानेवाला हो वह मांसाहार करे यह बिल्कुल असगत है। इसलिये प्रभुमहावीर को मांसाहारी मानना या कहना यह दिगम्बरों और उनके शास्त्रकारों की वालिशता है। श्वेताम्बर शास्त्रकारोंने प्रभुमहावीर को मांसाहारी कहीं नहीं लिखा। भगवतीसूत्र के १५ वें शतक में कहा है कि—

तत्थ ण रेवतीए गाहावतिणीए मम अठाए दुवे कवोयसरीरा उवक्खडिया तेहिं णो अट्ठो, अत्थि से अन्ने पारियासिए मज्जारकडए कुक्कुडमसए तमाहराहि, एएण अट्ठो।

—सिंहमुनि को प्रभु कहते हैं कि रेवती–श्राविका के यहाँ मेरे वास्ते 'दुवे कवोयसरीरा' दो कुष्माण्डफलों का

---

१ कपोतक पक्षिविशेषस्तद्वद् द्वे फले वर्णसाधर्म्यात् ते कपोते कुष्माण्डे ह्रस्वकपोते कपोतके ते चैते शरीरे च वनस्पतिजीवदेहत्वात् कपोतशरीरे।

पाक तैयार किया है उसकी जरूरत नहीं है परन्तु गत-दिन में रेवतीने खुद के वास्ते 'मज्जारकडए कुक्कुडमसए' वायु-विशेष की शान्ति के लिये अथवा अन्य आचार्य के मत से विरालिका नामक औषधि से तैयार किया हुआ बीजोरा-पाक है उसको ले आओ, वह निरवद्य है।

सिंह अणगारने निरवद्य बीजोरापाक लाकर प्रभु को दिया। उसके लेने से प्रभु की तक्लीफ मिट गई। बस, इसी सूत्रपाठ को देख कर दिगम्बर प्रभु को मांसाहारी कहेते हों तो उनकी भारी अनभिज्ञता समझना चाहिये। श्वेताम्बर भी दिगम्बर स्त्रियों के विषय में उपहास्य कर सकते हैं कि-दिगम्बरों की स्त्रियाँ निरन्तर घर में सुबह होते ही बालकों का, मन्दिर में उपास्य देवों तथा मुनियों का और रात्रि में पति का शिश्नदर्शन करती रहने से उनकी विषयपिपासा तृप्त नहीं होती। अतएव धर्मध्यान करने पर भी उनको मुक्ति नहीं मिलती। एक कवि क्या अच्छा कहता है —

> नागी आवे नागी जावे, नागी करे किलोल।
> नागे गुरु-देव माने, लहे न शिवपुर होल॥

अथवा कपोतशरीरे इव धूसरवर्णसाधर्म्यादेव, कपोतशरीरे कुष्माण्डफले इव ते उपस्कृते संस्कृते तेहिं णो अट्ठोसि' बहुपापत्वात्। २ मार्जारो वायुविशेषस्तदुपशमनाय कृत संस्कृत मार्जारकृतम्। अपरे त्वाहु-मार्जारो विरालिकाभिधानो वनस्पतिविशेषस्तेन कृत भावित यत्तत्तथा किं तत्? आह-कुक्कुटकमांसकं-बीजपूरकं कटाहम्। आहराहित्ति निरवद्यत्वात्। (टीका)

कुछ जिनेश्वरों के अलावा श्रीऋषभदेवादि जिनवरों का विवाहित जीवन दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों के शास्त्रकारोंने माना है। अत एव उनका विवाहित होना उपहास्य का कारण नहीं हैं। उनमें किसीको विवाहित मानना, किसीको नहीं यह बात अलग है। पर विवाहित जीवन तो दोनों को समान-रूपमे मान्य है।

७४ प्रश्न—सामायिक या प्रतिक्रमण करते हों तब आस-पास आग लगे, भयकर हत्यारा, चोर, हरामी, अपने बालक, बालिका या स्त्री पर अत्याचार करे या पास में रक्खी हुई चीज को ले भगे तो क्या उपाय लेना ?।

उत्तर—'सब्वे जीवा कम्मवसा' सभी जीव कर्म के वश-वर्ती हैं ऐसा समझ कर वैसा अवसर आ पडने पर चित्त को धर्म में दृढ रख कर बरतना प्रशसा-जनक है। क्योंकि धर्मक्रिया में चित्त का चलविचल करना दोष-जनक है। अगर चित्त स्थिर न रहे तो प्रथम उपस्थित बातों का योग्य इन्तिजाम करना चाहिये। बाद में फिर शान्तचित्त से निर्वद्य भूमि, पाट और चौकी पर बैठ कर सामायिक या प्रतिक्रमण कर लेना चाहिये। धर्मक्रियाओं में किसी तरह की व्यग्रता न हो वैसा उपाय लेना अच्छा है।

७५ प्रश्न—शान्तिसूरि के फोटो में पास में बडे-बडे सिंह खडे किये हैं, वे क्या सत्य के पोषक हैं ?

उत्तर—मालूम होता है उनके किसी अन्धभक्तने शान्तिसूरिजी की झूठी वाह-वाह कराने के लिये फोटाओं में सिंह खडे रहने का बनावटी तोतक (दम्भ) रचा है। वस्तुत उनमें सिंह के पास में खडे रहने की विलकुल सत्ता नहीं है। इसकी वास्तविक परीक्षा उनको सच्चे सिंहों के पास बैठाने या खडे रखने म हो सक्ती है। दुनियाँ विचित्र ढग की है, वह अपनी स्वार्थिक पिपासा के लिये कई प्रकार के आडम्बर-प्रपच रचती है। बुद्धिमान् लोग उस प्रपचजाल में नहीं फँसते।

७६ प्रश्न—व्यायाम क्रिया करने में अनर्थदंड का अपराध लगता है या नहीं ?।

उत्तर—शारीरिक स्वास्थ्य के लिये व्यायामक्रिया उपकारक और बलवर्द्धक है, लेकिन वह यतना और विवेक के साथ होना चाहिये। डेम्बल, वेइटींग, दड, बैठक, मुद्गरादि फेरना, योस्नीग, पट्टा, देशी और अंग्रेजी कुस्ती, ये व्यायाम अनर्थ-जनक नहीं है। लाठी, लेजीम, तरवार, तीरन्दाजी, सीने पर मोटर फिराना, रग, फुटबाल, जल-तरण, घोडे दौडाना, मोटर-साइसीकल, सादी-बाईसीकल, डबल बार, सिंगल बार, समरमोल्ट और नाच, आदि व्यायाम अनेक जन्तुओं की हिंसा और शरीरावयव-भग के कारण होने से अनर्थ-दडोत्पादक हैं, अत वे लाभ-कारक नहीं। नीति और धर्मरक्षा के युद्धों में श्रावक भाग ले सक्ता है, अन्य युद्धों में नहीं और इसीके लिये

उसको व्यायाम पूर्वक युद्ध या शस्त्र कला सीखना पडती है– जिसको वह वैसा कार्य आने पर काम में ले सक्ता है।

७७ प्रश्न—इज्जत–रक्षार्थ या कोर्टी मामले में सजा के भय से आत्महत्या करना, दुश्मन को मार देना और अपनी स्त्री के जार को मार डालना अच्छा है या नहीं ?।

उत्तर—जैनधर्म सर्वथा अहिंसात्मक है, उसमें छोटी या वडी किसी प्रकार की हिंसा को बिलकुल स्थान नहीं है। त्यागी–मुनि इसका पालन वीशो–विश्वा कर सकते हैं। गृहस्थों के लिये इसके पालन करने का नियम इस प्रकार बताया गया है—

- हिंसा
  - स्थावर
    - सूक्ष्म
    - बादर
      - पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति
  - त्रस
    - विकलेन्द्रिय, तिर्यञ्च, मनुष्य
      - संकल्पजन्य
      - आरंभजन्य
        - सापराधी
        - निरपराधी
          - सापेक्ष
          - निरपेक्ष
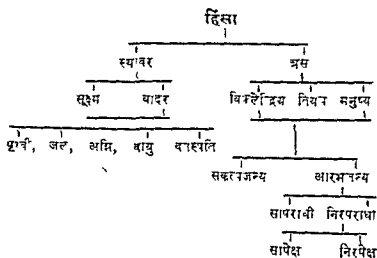
१ पृथ्व्यादि पाच सूक्ष्म–स्थावर, नारक और देव ये जीव तो अपने आयुष्य के समाप्त होने से ही मरते है, शस्त्रादि के

वध मे नहीं। इसलिये गृहस्थ से इसका वध होना अशक्य है। परन्तु जीवन-निर्वाह के लिये बादर-स्थावर जीवों की हिंसा गृहस्थों के लगे बिना नहीं रहती। भोजन बनाने बनवाने, घारा काटने कटवाने, चूल्हा-दीपक मिलगाने, मट्टी खोद कर मगाने, पानी डालने, नहाने-धोने वगैरह क्रियाओं के सपन्न करने कराने में हिंसा होना अनिवार्य है। इसलिये गृहस्थ बादर-स्थावर की हिंसा का त्याग नहीं कर सकता, पर उसका प्रमाण करके उस हद में कटिबद्ध हो हिंसा को कम कर सकता है और उसके यह नियम लाभ कारक है।

२ खेती, धान्यादि का व्यापार, मकानादि का निर्माण कराना और शरीर के सडितावयव में पतित कीटादि का उपचार कराना आदि क्रियाओं में विकलेन्द्रिय जीवों का वध होना स्वाभाविक है। अत गृहस्थ आरम्भजन्य हिंसा से मुक्त नहीं हो सकता, सकल्पजन्य (जानकर मारने की मानसिक) हिंसा से वह अलग रह सकता है—द्वित्रिन्द्रिय जीवों का बचाव कर सकता है।

३ चोर चोरी करने को घर में आया, धाटपाडुओं के फद में फसना पड़ा, अपनी स्त्री पर किसीने बलात्कार किया या उसके साथ किसीने व्यभिचार प्रेम लगाया, और हिंसक शेर, व्याघ्र, भुजग, आदि का मरणान्त कष्ट उपस्थित हुआ, एव राज्य की नौकरी होने से युद्ध में जाना पड़े, ऐसे अवसरों की

उपस्थिति में अपने बचाव के लिये उचित उपाय लेना पडता है। इसलिये गृहस्थ (श्रावक) को सापराधी–हिंसा से छुटकारा नहीं होता, अपराधी को हाथ दिखाना ही पडता है। वह निरपराधी के वध से सदा अलग रह सकता है।

४ अपने पुत्र, पुत्री, स्त्री, नौकर, कुटुम्बी, आदि को उचित शिक्षा देने के लिये ताडना तर्जना देना, बेल, भैंसा, घोडा, आदि को बाधिया करना या उनके नाक में डोरी डालने के लिये छेद कराना, उनको वाहन में जोतना, उन पर बोझा लादना, न चलने पर उनको लकडी वगैरह से मारना इत्यादि सापेक्ष–निरपराधी–हिंसा से गृहस्थ नहीं बच सकता। अपने निर्वाह के लिये उसे उक्त कार्य विवश हो करने पडते हैं। इसलिये मारने की इच्छा से निरपराधी निरपेक्ष त्रस जीवों की हिंसा श्रावक को नहीं करनी चाहिये।

कहने का मतलब यह है कि गृहस्थाश्रम की समस्या बडी विकट है, उसको हल करने के लिये कई तरीकों का आश्रय लिये बिना काम नहीं चलता। इसीसे शास्त्रकारोंने अपना आशय प्रगट किया है कि इरादा पूर्वक किसी को सताना तथा अधिकारमद, लोलुपता, कौतुक और उच्छृंखलता से किसीको तकलीफ देना, या मारना हिंसा है। किन्तु अपने ऊपर या कुटुम्ब, देश, गाँव, समाज और धर्म पर अत्याचार, अन्याय या जुल्म गुजारनेवालों को हाथ दिखलाना, उनका हर तरह प्रतिकार करना या

उनको उचित शिक्षा देना हिंसा नहीं है। जैनशास्त्रों में उदाहरण भी मिलते हैं कि द्वादशव्रतधारी वरनाग श्रावकने षष्ठ-भक्त तप के पारणा में युद्ध के व्युगल को सुन कर अष्टम-भक्त का प्रत्याख्यान लिया और स्वदेशादि रक्षा के लिये युद्ध किया। उसने छाती में मर्म-वेधी बाण लगने से जीवन की आशा छोड़ कर अनशन किया। श्राद्धव्रतधारी महाराजा चेटकने कोणिकराजा के साथ बारह बार युद्ध किया। एक ही युद्ध में एक क्रोड अस्सी लाख मनुष्यों का संहार हुआ। इसी प्रकार महाराजा परमार्हत कुमारपाल, महामंत्री उदयन, वाग्भट, विमलशाह, वस्तुपाल, तेजपाल, भामाशाह, दयालशाह, आदि अनेक जैनवीरोंने महायुद्ध किये। ऐसे लोगों को शिक्षा दिये बिना गृहस्थ जीवन का उचित रीति से निर्वाह नहीं हो सकता।

दिगम्बर-शास्त्रकारोंने भी चार प्रकार की हिंसा लिखी है-सङ्कल्पी (निरपराधी को इरादा पूर्वक सताना या मारना) १, आरम्भी (भोजन, गमनागमन करने में उपयोग रखते हुए भी जीववध होना) २, उद्योगी (खेती या धान्यादि व्यवसाय करने में जीवों का मरना) ३ और विरोधी (आत्मरक्षा के वास्ते स्व-पर को गोलीबार करना या मरणान्त कष्ट देना, अथवा राज्यादि भय से आत्मघात करना) ४। गृहस्थों के स्थावरजीवों की हिंसा रुकना अशक्य है, वह त्रसजीवों की सकल्पी हिंसा से अलग रह सकता है। खेती, धान्य व्यवसाय, लडाई आदि सकल्पी-हिंसा में नहीं है। इसलिये अहिंसारूप

अणुव्रत का धारक अपने निर्वाह के लिये खेती, व्यवसाय, आदि द्वितीय प्रतिमा तक कर सकता है और उसका त्याग आठवीं प्रतिमा में होता है।

इस विवेचन का मतलब यह नहीं है कि गृहस्थाश्रम सम्बन्धी जीवन-निर्वाह के कार्यों में हिंसा का दोष नहीं लगता, इससे हिंसाजनक प्रवृत्ति करते ही रहना। अपना-अपना जीवन प्राणिमात्र को प्रिय है, सुख सब को अच्छा और दुःख सब को अप्रिय लगता है। जितने अंश में हिंसा को कम करने का प्रयत्न किया जाय और गृहस्थाश्रम में काम आनेवाली चीजों को यतना पूर्वक अच्छी तरह देख कर इस्तेमाल की जाय उतना ही अधिक लाभ है। सारा पापाश्रव अयत्नाचार प्रवृत्ति से लगता है और हिंसाजन्य पाप का बंध होता है। कहा भी है कि—

मरदु व जियदु व जीवो, अयदाचारस्स णिच्छिदा हिंसा।
पयदस्स णत्थि बंधो, हिंसामेत्तेण समिदस्स ॥ १ ॥

—यत्न रहित आचार प्रवृत्ति में चाहे जीव मरे या न मरे हिंसा का पाप लगता ही है और यत्न पूर्वक प्रवृत्ति में हिंसा होने पर भी उसका पापबन्ध नहीं होता। इसलिये भोजन-योग्य चूल्हा, बरतन, आटा, दाल, लकडी, छाना, शाक, धान्य व्यवसाय, जल, मकान-निर्माण आदि गृहजीवन के निर्वाहक कार्यों में यतना और विवेक पूर्वक पूरी सावधानी से

तपास करके काम लिया जायगा तभी तज्जन्य पापकर्म का बन्ध कम होगा। आत्म-रक्षा, शासन और संघ आदि की रक्षा के वास्ते किसीको उचित शिक्षा देनी पड़े उसकी बात अलग है। हो सके जहाँ तक हिंसाजन्य प्रवृत्ति कम करने की भावना रखनी चाहिये-जिससे आत्मा कर्मलेप से बच सके।

आत्महत्या महा-हत्याओं में से एक है। कहावत भी प्रचलित है कि 'आत्मघाती-महापापी' महापापी को सद्गति कभी नहीं मिलती। अतएव इज्जत रक्षा या और किसी कारण की उपस्थिति में आत्मघात करना अच्छा नहीं है। ऐसे अवसर को टालने के लिये गाँव या देश को छोड़ कर चले जाना लाभ कारक है। अगर ऐसा भी मौका न मिले और आत्महत्या किये विना न चल सके तो समाधिमरण (अनशन) से सब वस्तु का त्याग करके परमेष्ठि-मंत्र का ध्यान करते हुए शरीर को छोड़ देना सर्वोत्तम है।

७८ प्रश्न—ऋणी या खूनीने दीक्षा ले ली बाद वह पकड़ा जा कर जेल में भेजा गया, अथवा विना आज्ञा से दीक्षा लेने पर उसकी औरत आदिने दावा किया। कोर्टने उससे खर्चा दिलाने का हुकम दिया। वैसी हालत में क्या उपाय करना अच्छा है?।

उत्तर—जिसके पीछे कुटुम्ब निर्वाह करने या राजकीय सत्ता होने का प्रपंच खड़ा हो उसको प्रथम दीक्षा नहीं देना

चाहिये, यही शास्त्रीय निर्विघ्न मार्ग है। अगर भूल से किसी बात का पता न लगने पर दीक्षा दे दी गई हो तो सघ हर तरह से समझाने का प्रयत्न करे और उस मामले को यथा-शक्ति पार लगावे। प्रयत्न करने पर भी मामला हल न हो सके तो फिर भवितव्य पर छोड़ देवे। क्योंकि—'अवश्य भावि भावाना, प्रतिकारो न विद्यते' अवश्य होनेवाले भावों का ससार मे कुछ भी उपाय नहीं है। कर्म की गति बडी विचित्र है, उससे छुटकारा मिलना सहल नहीं है। कहा भी है कि—

ये वज्रमयदेहास्ते, शलाकापुरुषा अपि।
न मुच्यन्ते विना भोग, स्वनिकाचितकर्मणः ॥ १ ॥

—वज्रमय शरीरवाले जो तिरसठ शलाका महा-पुरुष थे वे भी अपने बाधे हुए निकाचित-कर्म के भोग से कभी छुटकारा नहीं पाये, तो इतर की क्या बात है?।

७९ *प्रश्न—सिद्धसेनदिवाकरने सूत्रों को सस्कृत में करना* चाहा उनको कठिन दड क्यों दिया गया?, आज कई ग्रन्थ सस्कृत में नजर आते हैं सो क्या कारण?।

उत्तर—सिद्धसेनदिवाकरने गुरु से कहा कि जैनागम प्राकृत-भाषा में है और यह भाषा अच्छी मालूम नहीं होती, *इसलिये आप कहें तो सभी आगमों को सस्कृत में कर दू।* आगम का अनादर सूचक वचन सुन कर गुरुने उनको कठिन

दड दिया और अपनी भूल मान कर सिद्धसेनने महर्षं उसको मजूर किया। जिस भाषा को तीर्थंकर, गणधर और समर्थ बहुश्रुताचार्योंने अपनाइ है उसके अच्छेपन में सन्देह लाना श्रुताशातना है और उस आशातना का प्रायश्चित्त (दड) कठिन ही दिया जाता है तभी पाप से छुटकारा होता है। अन्य ग्रन्थकारोंने सस्कृत में ग्रन्थ बनाये हैं वे प्राकृत भाषा को मान्य रख कर बनाये हैं। इससे जनता की दृष्टि में वे सन्मान पा रहे हैं और पाते रहेंगे। प्राकृतभाषा संस्कृत भाषा से किसी अश मे कम नहीं है। श्रीराजशेखरसूरिने अपनी कर्पूरमजरी में लिखा है कि—

परुसा सक्क अबधा, पाउअबधो वि होइ सुकुमारो।
पुरुष महिलाण जेंति य, मिहतर तेत्तियमिमाण॥ १॥

—सस्कृत की रचना कठोर है और प्राकृत की रचना सुकुमार है। पुरुष और स्त्री के बीच में जितना अन्तर है उतना ही दोनों भाषाओं में परस्पर अन्तर समझना चाहिये। बाल, स्त्री, मन्द और मूर्खों को प्राकृत भाषा से जितना जल्दी बोध होता है, उतना सस्कृत भाषा से नहीं होता। अतएव वह सस्कृत की अपेक्षा विशेष उपकारक है।

८० प्रश्न—उपमितिभवप्रपञ्च के मुकाबिले जैन-अजैनों में कोई ग्रन्थ है या नहीं ?।

उत्तर—जैनेतरों में तो उपमितिभवप्रपञ्च के जैसा कोई

ग्रन्थ देखने में आया नहीं। जैनों में इसकी कुछ समानता रखनेवाले वैराग्यकल्पलता, प्रबोधचिन्तामणि, मोहविवेकरास और भुवनभानुकेवलीरास, आदि ग्रन्थ हैं जो छप चुके हैं और प्राप्य भी हैं।

८१ प्रश्न—गौतमस्वामी स्वय ज्ञानी थे तो फिर प्रभु से प्रश्न क्यों पूछे ?।

उत्तर—गौतमस्वामी श्रुतकेवली (पूर्वधर) होने से स्वय समस्त वस्तुतत्त्व को भलीभाँति जानते थे परन्तु उनका ज्ञान छाद्मस्थिक साकारोपयोगी होने से उसमें भूल हो जाना सभव है। इसलिये स्वपर के हित को लक्ष्य मे रख कर समय-समय पर उन्होंने प्रभु से विविध प्रश्न पूछे और उनके उत्तर प्रभुने दिये-जो अग-उपाग सूत्रों मे लिपिबद्ध सगृहीत हैं।

८२ प्रश्न—शनि, मगल और अमावास्या को क्षौरकर्म कराना या नहीं ?।

उत्तर—व्यवहारदृष्टि से शनि, मगल और अमावास्या को क्षौरकर्म कराना अशुभ माना गया है। आरम्भसिद्धि तृतीय विमर्श की टीका मे लिखा है कि चौथ, छट्ठ, आठम, नवमी, चौदश और अमावास्या को बालक का प्रथम क्षौरकर्म और शिष्य का प्रथम लोंच नहीं कराना चाहिये। अन्य के लिये तो यह नियम है कि—

क्षौरे मास दुनोत्यर्को, भौमोऽष्टौ सप्तसूर्यज' ।
षट् प्रीणातीन्दुरष्टौज्ञो, गुरुर्नव भृगुर्दश ॥ १ ॥

—रविवार को १, मगलवार को ८, शनिवार को ७ महीना तक क्षौर या लोच करानेवाला दुःखी रहता है और सोमवार को ६, बुधवार को ८, गुरुवार को ९ तथा शुक्रवार को १० महीना तक क्षौर या लोच करानेवाला सुखी रहता है। इसमें शनि, रवि, मगल ये तीन वार अशुभ और सोम, बुध, गुरु, शुक्र ये चार वार शुभ माने गये हैं। व्यवहार-दृष्टिवालों को इस नियम का पालन करना हानि कारक नहीं है। फिर उसको पालन करना न करना अपनी मरजी पर निर्भर है। धार्मिक दृष्टि से कोई बाधा मालूम नहीं होती, बने जहाँ तक बडी पर्वतिथियों को टाल देना अच्छा है।

८३ प्रश्न—प्राणिजन्य कस्तूरी, रेशम, ढोल, नगारादि जिनमदिरों मे वापरना अच्छा है या नहीं ?।

उत्तर—आचरणा से कस्तूरी और गोरोचन को पवित्र माना है पर वे प्रभु की अगपूजा में काम नहीं आ सकते, प्रतिष्ठादि कार्यों म काम आ सकते हैं। प्रभु की अगपूजा मे विशुद्ध केशर, चन्दन और बरास-मिश्रित विलेपन ही काम मे लेना अच्छा है। चमड़े के मढे हुए नगारे, ढोलक, तबले आदि वाद्य मगल-सूचक होने से गूढ मडप (गभारा) और नौचोकी की हद से बाहर रगमडप मे रक्खे जायँ तो कोई हरकत

मालूम नहीं होती। रेशमी–कीड़ों के रस के धागों से बनाया रेशमी वस्त्र है उसको जिनमन्दिर या अपने घरकार्य में नहीं वापरना चाहिये, किन्तु सनिया वस्त्र वापरने मे कोई हरकत नहीं है। जिनपूजा मे तो धोए हुए और अखंड श्वेत सूत के बने हुए वस्त्र वापरना उत्तम है।

८४ प्रश्न—त्रिकाल पूजा करने का टाइम कौन कौनसा है?

उत्तर—प्रात काल, मध्याह्न और सूर्यास्त के कुछ पहले का सन्ध्याकाल ये त्रिकाल कहलाते हैं। क्रमश प्रात काल में विलेपन, कुसुमादि से प्रभु की अगपूजा, मध्याह्न मे धूप–दीप, अष्टमगल आलेखन, फल और नैवेद्य ढोकनादि से अग्रपूजा और सध्या को आरती, मगलदीपक, धूपोत्क्षेपण से पूजा हो सकती है। बस, यही क्रम त्रिकाल पूजा का समझना चाहिये।

८५ प्रश्न—बाजारू आटा, मैदा, सोजी, बेसन, मिठाई, आदि और बिना साफ या थोड़ा साफ किया घरू आटा इस्तेमाल करना या नहीं?।

उत्तर—जिन वस्तुओं के वापरने से शरीर का स्वास्थ्य बिगड़ जाय और शास्त्रीय आचारों को बाधा पहुंचे वैसी चीजें धर्म–प्रेमियों के वापरने लायक नहीं हैं। बाजार में आज कल जो आटा, मैदा आदि चीजें थोक बन्ध मिलती हैं उनमें कालातिक्रम दोष और जन्तुओं का पड़ जाना अवश्य है। अगर जन्तु न भी पड़ें पर कालातिक्रान्त दोष से तो वे दूषित

ही हैं। अतएव सदाचारदृष्टि से बाजारू चीजें इस्तेमाल करने योग्य नहीं हैं। छान कर साफ किया हुआ घरू आटा या मिठाई आदि काम में लेना लाभ-दायक और स्वास्थ्य-कर है।

जालोर (मारवाड़) सं० १९९७ कार्तिकशुक्ला ५

८६ प्रश्न—पके अधपके खाखरे, तलीरोटी, नरमपूड़ी, लापसी, नींबु क रस से बाटी चटनी, रायता, ये रातबासी खाये जा सकते हैं या नहीं ?।

उत्तर—रातबासी उक्त वस्तुओं में तद्वर्णवाले रसजा (लालिया) जन्तु पैदा होते हैं ऐसी शास्त्रीय मान्यता है। जिन खाद्य पदार्थों में थोडा या अधिक जलांश रहता है वे रात्रि को रहने से रातबासी कहलाते हैं और वे अभक्ष्य में शुमार किये गये हैं। अतएव ऐसे पदार्थ विवेकी धर्मशील लोगों को नहीं खाना चाहिये। जिन पदार्थों को कड़क सेके हों और उनमें जलांश बिलकुल रहा न हो ऐसे खाखरे आदि खाने में हरकत नहीं है।

चावल और उड़द की दाल को महीन पीस कर रातभर पानी में भिगो कर रक्खा और फिर उसको इटली के पात्र में पानी की आँच से पकाया हुआ धोंसा भी श्रावक को खाने योग्य नहीं है। जलेबी की बनावट भी अभक्ष्य रूप में होती है, अतः वह भी अखाद्य ही समझना चाहिये। कलेवा (नाश्ता) के वास्ते दूसरी शुद्ध चीजें बहुत हैं, उनको इस्तेमाल करना अच्छा है। कहा भी है कि—

निरवज्जाहारेण, निज्जीवेण परित्तमीसेण ।
अत्ताणुसधणपरा, सुसावगा एरिसा हुति ॥ १ ॥

—आत्मगुण का विकास करने मे तत्पर सुश्रावकों को दोष रहित, निर्जीव और जमीकन्दादि अभक्ष्य वस्तु से रहित आहार से अपना निर्वाह करना चाहिये। श्रीजिनवल्लभसूरिरचित श्राद्ध-कुलक मे भी कहा है कि—

महुमक्खणसघाडग–गोरसजुअ विदल जाणियमणत ।
अन्नायफल वयगण, पचुबरिमजि न भुजति ॥ १ ॥

—मधु, मक्खन, सिंगोडा, दही के साथ दो फाडवाला धान्य, अनन्तकाय, अज्ञातफल, बेंगन, पाच जाति के उम्बरफल, इनको अभक्ष्य जान कर नहीं खाना चाहिये।

८७ प्रश्न—श्वेताम्बर मान्य ४५ आगम के नाम, उनका विषय और छेदसूत्र तथा चूर्णि का क्या मतलब है ?।

उत्तर—आगमों के नाम और उनका सक्षिप्त विषय जानने की इच्छा पूर्ति के लिये 'सम्राट्–सप्रति' नामक गुजराती पुस्तक मगा कर देखो, जो झवेरी मगलचद त्रिकमदास, टेंबीनाका, मु० ठाणा के पते पर मिलती है।

आगमों के अन्तर्गत छ छेदग्रन्थ जैनों के नियम–विधान के ग्रन्थ हैं जिनको 'कानूनी' शास्त्र भी कहे जायें तो अनुचित नहीं है। इन मे उत्सर्ग अपवाद से मूलोत्तरगुणो मे साधु

साध्वियों को जो दोष लगते हैं उनके प्रायश्चित्त निरूपण किये गये हैं।

निर्युक्ति, भाष्य, चूर्णि, दीपिका, टीका, वृत्ति, अवचूरी और अक्षरार्थ ये सभी नाम आगमों के आशय को सामान्य विशेषरूप से समझानेवाली व्याख्याओं के जानना चाहिये।

८८ प्रश्न—कर्म की प्रधानता होने पर भी मोत के तरीके क्यों बतलाये गये हैं ?।

उत्तर—निश्चयनय की अपेक्षा से तो जिसका जितने निमित्त लिये हुए आयुर्बन्ध होता है, वह उतना ही भोग कर उसी निमित्त से मरता है, उसको न्यूनाधिक करने की सामर्थ्य किसी में नहीं है। व्यवहार (लोक) दृष्टि को लक्ष्य में लेकर आवश्यकनियुक्तिकारने लिखा है कि—

अज्झवमाण निमित्ते, आहार वेयणा पराघाए।
फासे आणापाणू, सत्तविह जिज्झए आउ ॥ ७२३ ॥

—१ अध्यवसाय (राग, स्नेह, भयादि), २ निमित्त (लकड़ी, चाबुक, विषपान, शस्त्रादि), ३ कम, अधिक या विकृत भोजनादि आहार, ४ वेदना (शूली, गलफासा आदि), ५ पराघात (नदी, कूप, द्रह, तटाक, खाड़ा, अग्निपात आदि), ६ स्पर्श (विषकन्या, साप, बिच्छु आदि का काटना) और ७ श्वासोच्छ्वास का न लेना, इन सात कारणों से आयुष्य का क्षय होता है। कहने का तात्पर्य यह है कि—लकड़ी, चाबुक, रस्सी,

शस्त्र, आग, जल, विषपान, ठंड, गर्मी, भय, सापदंश, क्षुधा, तृषा, व्याधि, अजीर्ण, मलमूत्रावरोध, निकृतान्न, पीलन, घर्षण, छेदन, ठोकर, आदि कारणों से जो मृत्यु होती है उसको लोग कुमोत या अधमोत से मरना कहते हैं। वास्तव में ऐसा नहीं है। मृत्यु आयुष्कर्म के पूर्ण होने से ही होता है।

८९ प्रश्न—मासाहारियों या आचार-विहीन लोगों के घर से साधु आहार-पानी ले सकता है या नहीं ?।

उत्तर—ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य सम्बन्धी कुलों में मासाहार की प्रवृत्ति चालु हो, पर उनके घर में भोजन बनाने और मासादि अभक्ष्य चीजें पकाने का स्थान अलग-अलग हो, वर्तन भी अलग-अलग हों, घर के लोग चोके में जाते न हों, भोजन बनानेवाला मासाहारी न हो, ऐसे घरों से यथावसर साधु आहार या पानी ले सकता है, इससे विपरीत व्यवस्था में नहीं। व्यवहारसूत्र भाष्यवृत्ति में कहा है कि—

" सूतकादिदशदिवसान् यावद्वर्ज्यते इति यावत्कथिक वरुड-छिम्पक-चर्मकार-डोम्बादि।"

जन्म-मरण का सूतक दश दिन तक वर्जना और यावत्कथिक-वरुड, छीपा, चमार, डोंब आदि नीच कुल का आहार लेना छोड देना चाहिये। अत निन्दनीय कुलों में गोचरी जाना शास्त्रविरुद्ध और लोकापवाद-जनक है।

मास, मदिरा, मधु, माखन, इन महाविगयों के अलावा

अचित्त की हुई चीजें या उनका बना शाक बयालीस दोषों से रहित हो तो साधु ले सकता है । उनके लेने से साध्वाचार में किसी तरह की खामी नहीं आती । हाँ देशकाल को अवश्य देखना चाहिये । जो भूमिकन्दादि अभक्ष्य चीज हैं वे गृहस्थोंने अपने वास्ते नमक मरिचादि डाल कर अग्नि से सम्कृत की हों तो साधु सम्बन्धि दोषों से दूषित न होने पर वे साधु के लिये दोष जनक नहीं हैं । साधु सचित्त त्यागी होते हैं इससे वे सचित्त या सचित्त मिश्रित कोई वस्तु नहीं ले सकते । जो वस्तुएँ साधुओं के लेन योग्य हैं परन्तु उनके लेने से मूर्खलोग निन्दा कर या 'साधु लेते हैं तो अपने को खाने में क्या दोष है ?' ऐसा समझ कर वैसी चीजों का भक्षण करने लगें, ऐसी हालत में लेने लायक चीजे भी साधुओं को नहीं लेना चाहिये।

शास्त्रकारों का भी यही आशय है कि—

'शृद्धार्द्रकसूरणवृन्ताकादिप्रासुकमपि सर्वं वर्ज्यं प्रसङ्ग-दोषपरिहाराय' श्राद्धविधिटीकायाम । 'अनन्तकायिकमन्य दप्यमक्ष्यमचित्तीभूतमपि परिहार्यं नि शूकतालौल्यवृद्ध्यादि-दोषसम्भवात्परम्पराया सचित्ततद्ग्रहणप्रसङ्गाच्च' धर्मसंग्रह-टीकायाम ।

'जइ नायगणपमुह, तीमण सया अचित्तमवि न जइ ।
गिण्हइ पविचित्तिदोस, सम्म यदि हरिउ इच्छतो ॥६२॥'

सन्देहदोलावली ।

अर्थात्—नि शूकता, लोलुपता और परम्परा से सचित्त-ग्रहण आदि अनेक दोषों की सभावना होने से आदा, सूरण-कन्द, आलु, प्याज, लसन, मूला, गाजर आदि अनन्तकायिक तथा वेंगनादि अभक्ष्य राध कर अचित्त किये गये हों तो भी प्रसगादि दोप निवारण के लिये साधु माध्वियों को नहीं लेना चाहिये। इससे यह सिद्ध हुआ कि उक्त चीजे, उनका शाक और लसुन-आदा की चटनी निर्दोष और लेने योग्य होने पर भी साधु-माध्वियों को लेना अयोग्य है। क्योंकि उनके ग्रहण करने में लोलुपता एव प्रसगादि दोप लगता है।

९० प्रश्न—आयुर्वेद में मकरान, मधु, अदरस, आदि अभक्ष्य वस्तुओं का उपचार क्यों कहा?, क्या महर्षि लोग इनके उपचार में दोप नहीं मानते थे? ऐसे उपचार जैन अजैनों के निर्मित ग्रन्थों में पाये जाते हैं।

उत्तर—श्रीऋषभदेवप्रभुने ७२ और ६४ कलाओं में आयुर्वेद-कला का आविष्कार किया। उसके समर्थक हितोपदश-वैद्यक, योगचिन्तामणि, वैद्यरत्नावली, निघटुरत्नाकर, आर्यभिषक्, जैनसप्रदायीशिक्षा, आदि अनेक प्राचीन अर्वाचीन ग्रन्थ उपलब्ध हैं, उनका वास्तविक उद्देश लोकोपकार करना है। उनमें लिखित उपचारों में कतिपय हेय (त्यागने योग्य) कतिपयज्ञेय (जानने योग्य) और कतिपयउपादेय (ग्रहणकरने योग्य) समझने चाहिये। इस विषय का ज्ञान होना स्त्री पुरुप दोनों

के लिये अत्यावश्यकीय है। जब मनुष्य पर महान व्याधि की विपत्ति सवार होती है और वह मरणदशाभिमुख हो जाता है तब मर्यादा पालन करने में न समर्थ रहता है, और न समाधिस्थ। उस हालत में लोकापवाद टालने और व्याधि ग्रस्त का चित्त शान्त रखने के लिये हेय तथा ज्ञेय उपचारों का आश्रय भी विवश हो लेना पड़ता है। उक्ति भी है कि 'विपत्तौ मर्यादा नास्ति' मरणन्ताभिमुख विपत्तिकाल में मर्यादा का पालन होना कठिन है। इसलिये आयुर्वेद के ग्रन्थकारोंने वैसी स्थिति को ख्याल में लेकर भक्ष्याभक्ष्य उपचार लिखे हैं वे अनुचित नहीं है। किसी न किसी तरह रोगी को शान्ति पहुचाना यही उन ग्रन्थकारों का शुभ आशय है। जो रोगी मरणभय से डरते नहीं है और भारी रुग्नावस्था में भी तकलीफ सहन करते एव मनको समाधि में रख सकते हैं। उनके लिये हेय ज्ञेय उपचारों की कुछ भी जरूरत नहीं है। उनके लिये तो केवल उपादेय (भक्ष्य) उपचार ही समादरणीय हैं और वे उपचार भी लोकापवाद टालने के लिये कराना न कराना रोगी की इच्छा पर निर्भर हैं। आजकल r

विदेशी दवाओं के विषय में भी यही

मज्जे महुम्मि मसंमि,
उप्पज्जति अणता,

—मदिरा, मधु, मास

समान वर्णवाले अनेक (अनन्त) त्रस जीव उत्पन्न होते हैं, इससे ये चारों अभक्ष्य हैं। इस प्रकार से मधु, मक्खन में शास्त्रकारोंने जो जीवोत्पत्ति होना बतलाई है वह अयुक्त नहीं है। इसलिये उनका परिभोग कारण विशेष में निर्दिष्ट विधि से ही हो सकता है, अन्यथा नहीं। बीस या पचीस दिवस के मक्खन में तो तद्वर्णवाली लटें पड जाती हैं यह अनुभव सिद्ध है। इस मक्खन का बना घृत खानेवालों को अहितकर है, इससे छास में से निकलते ही ताजे मक्खन का घी शुद्ध और शरीरारोग्य कर है। आयुर्वेद में अशुद्ध घी और दिनी मक्खन खाने का आदेश नहीं दिया, किन्तु शुद्ध और ताजे का आदेश दिया गया है। दूसरों के घर भोजन करने में अशुद्ध घी खाना अच्छा नहीं, आगे खानेवाले की मरजी की बात है, पर यह व्यवहार सदाचारदृष्टि से सराहने योग्य नहीं है। श्री क्षमाकल्याणकोपाध्यायने 'चातुर्मासिकपर्वव्याख्यान' में कहा है कि—

अज्ञातकं फलमशोधितपत्रशाकं,
पूगीफलानि सकलानि च हट्टचूर्णम्।
मालिन्यसर्पिरपरीक्षकमानुषाणा-
मेते भवन्ति नितरां किल मांसदोषाः ॥ १ ॥

—विना जाने हुए फल, विना शोधा हुआ पत्रशाक, सर्व जाति की सोपारी, बाजारू आटा, मलिन और विना

परीक्षा किया हुआ घी, ये सभी अभक्ष्य हैं, इसलिये इनका भक्षण करने से मास खाने के बराबर दोष लगता है।

मधुमिश्रित च्यवनप्रास, कुष्माकाड, और द्राक्षासव आदि अकारण साधु–साध्वियों को नहीं लेना चाहिये, कारण विशेष की बात अलग है। अंग्रेजी दवाईयाँ बाह्य परिभोग के लिये लेना हरकत कारक नहीं है। लेकिन खाने पीने के काम में अप्राणिजन्य शुद्ध दवाइयाँ ही लेना चाहिये। अजैनों में भी कई अच्छे महात्मा अंग्रेजी दवाईओं को इस्तेमाल नहीं करते और न जैनों में। आज समय का चक्र फिरा है और साधुओं में भी आपखुदी का रोग लागु पड गया है, इससे देखा–देखी से किसी आचरण का आश्रय लेना लाभ कारक नहीं है।

९४ प्रश्न—प्रतिज्ञा ली हुई किसी चीज के बिना देशान्तर में काम न चल सके तो क्या करना ?।

उत्तर—गृहस्थों के धान्य या भात का नियम नहीं होता किन्तु उसका वजन प्रमाण होना है। नियम लिया जाता है वनस्पति सम्बन्धी फल, पत्र, बीज, फली आदि का। मनुष्य किसी भी देश में रहा हो वहाँ उस नियम के पालन करने में उसके किसी तरह की बाधा नहीं आती। इसलिये कृत प्रतिज्ञा का भग करना अच्छा नहीं है, बीमारी हालत की तो गृहस्थ के छूट है। अगर कोई नियम लिया हो प्रथम तो उसको निभाना ही चाहिये। कदाचित् किसी तरह निर्वाह कर सकने

जैसा न हो तो उसे गुरु के सामने जाहेर करना, वे जो उपाय बतलावें वैसा करना चाहिये।

९२ प्रश्न—आचार्यादि को पत्र लिखने में १००८, १०८ और ५ श्री लगाने का क्या मतलब है ?।

उत्तर—जिनेश्वरों के शरीर पर १००८ शुभ लक्षण, पच परमेष्ठी के १०८ गुण और साधु के महाव्रतरूप ५ रत्न होते हैं और इन्हीं लक्षणों से उन्हों का ससार में वचनातीत प्रभाव फैलता है और ससार में पूज्यतम माने जाते हैं। आचार्यादि को योग्यतानुसार उतनी श्रीलेखन का मतलब यही है कि आप भी उसी प्रकार के उत्तम लक्षण और गुणों से शोभित हों या उनके सम्पादन में सफल-मनोरथ बनें। इसी विषय के समर्थक प्राचीन दोहे भी है कि—

सहस ने अड सुलक्खणि, तणु शोभित अरिहत।
इगसय अड गुण सुहंकरु, परमिट्ठी महमत ॥ १ ॥
नयरयणें नित सोहता, साहु सयल जयकारि।
पुज्जपय पामे सखरो, जगमा जे हितकारी ॥ २ ॥
इणिगुणें करी प्रभु तुमो, रहो बनो जयवत।
परमारथ इम जाणिये, श्रीलेखन सिद्धांत ॥ ३ ॥

९३ प्रश्न—जैनमुनि न नहाने से अपवित्र हैं ऐसा अजैन लोग उपहास करते हैं। साधु चर्बीमिश्रित साबुन से कपड़े धोते हैं तब नहाने में क्या दोष है ?।

उत्तर—सच्चे साधु, मुनि, सन्त और परमहंस ये जीव मात्र को अपने समान मान कर हर तरह उनकी रक्षा करते हैं। कभी झूठ, चोरी, व्यभिचार, लालच आदि अत्याचारों के फंदे में अपनी आत्मा को फंसाते नहीं हैं और क्रोध को क्षमा से, अहंकार को कोमलता से, माया को सरलता से, लोभ को सन्तोष से, विषयवासना को संयम से, प्रमाद को शुभयोगों से, मिथ्याभाव को सत्य से, आर्त्तरौद्र को मानसिक शुभ भावना से और अविरति को सावद्यकार्यों के त्याग से जीतते हैं। वे बाहर और भीतर सदा पाक (पवित्र) रहते हैं। इसलिये उनको बाह्य-स्नान की बिल्कुल दरकार नहीं है। वे हमेशा पवित्र ही हैं और इसीसे उनको बाह्य-स्नान के लिये शास्त्रकारोंने अकारण आज्ञा नहीं दी। अजैनशास्त्रकारोंने लिखा है कि—

स्नानं मददर्पकरं, कामाङ्गं प्रथमं स्मृतम्।
तस्मात्कामं परित्यज्य, न स्नान्तीह दमे रताः ॥ १ ॥
स्नानमुद्वर्त्तनाभ्यङ्गं, नखकेशादिसंस्क्रियाम्।
गन्धमाल्यं च धूपं च, त्यजन्ति ब्रह्मचारिणः ॥ २ ॥

—स्नान अहंकार और मैथुनेच्छा का उत्पादक है और यह काम का पहला अंग कहा गया है। अतएव काम (विषय वासना) का त्याग करके साधु स्नान नहीं करते। स्नान, उबटन, तैलादि मर्दन, नख-केश समार्जन, सुगन्धी, माला धारण और धूप से धुपाना आदि बातें ब्रह्मचारियों को त्याग देनी चाहिये। श्रीनिशीथ चूर्णिकार लिखते हैं कि—

छक्कायाण विराहणा, तप्पडिबधो य गारवविभूसा ।
परिसहभीरुत्त पि य, अविस्सासो चेव ण्हाणम्मि ॥

ण्हायतो छज्जीवणिकायाण वहति । ण्हाणे पडिबधो भवति पुन पुन स्नातीत्यर्थः । अस्नातसाधुशरीरेभ्यो निर्मलशरीरोऽहमिति गौरव कुरुते–स्नानविभूषा एवालङ्कार इत्यर्थः । अण्हाणपरिसहाओ बीहेति त न जिनाति इत्यर्थः । लोगस्साविश्रम्भणीयो भवति । एते स्नान–दोषा उक्ताः ।

—स्नान से षट् निकायिक जीवों की विराधना होती है, वार–वार न्हाने की इच्छा होती है, विना स्नान किये अन्य साधु के शरीर से मेरा शरीर स्वच्छ है ऐसा मन में गौरव बढता है, स्नान ही शोभा का अलङ्कार है ऐसी भावना होती है, अस्नान परिषह को जीता नहीं जा सकता, और लोक में स्नान करनेवाला साधु सशयास्पद होता है । इत्यादि अनेक दोषों का कारण स्नान है, इसलिये साधु को स्नान नहीं करना चाहिये ।

दूसरी वात यह कि–स्नानक्रिया विभूषा का एक अग है, जो साधुओं के ब्रह्मचर्य में बाधक है । उसकी रक्षा के लिये शास्त्रों में लिखा है कि—

वसहि कह निसिज्जिंदिय, कुड्डतर पुव्वकीलिअ पणिए ।
अइमयाहार विभूसणा य, नव बभचेरगुत्तीओ ॥ १ ॥

—ब्रह्मचर्य साधुधर्म का जीवन है । इसलिये १–स्त्री, पशु,

षडक रहित स्थान में रहना, २—स्त्रियों से एकान्त में या अधिक बातें न करना, ३—जहाँ स्त्री बैठ कर उठ गई हो वहाँ दो घड़ी बीत बिना न बैठना, ४—स्त्रियों के अंगोपांग न निरखना, ५—ठहरने योग्य स्थान की भींत के अन्तर में पति-पत्नी कामभोग की बातें करते हों वहाँ न ठहरना, ६—गृहस्थावस्था में भोगोपभोग (ऐश आराम) किये हों उनको याद न करना, ७—विकार-वर्द्धक आहार न करना, ८—अधिक भोजन न करना और ९—स्नान, विलेपन, आभूषण, आदि से शरीर की शोभा न करना। ब्रह्मचर्य की सुरक्षा के लिये साधुओं को इन नौ नियमों का भली-भाँति पालन करना चाहिये। तभी ब्रह्मचर्य और साधुत्व निर्दोष रह सकता है, अन्यथा नहीं।

काया दुर्गन्धि-पूर्ण है, उसको चाहे जितनी मल-मल के साफ की जाय और चाहे जितने सुगन्धि तेल फुलेल लगाये जायँ पर वह अपनी अपवित्रता को कभी नहीं छोड़ती। उसके नव द्वारों से अन्तर्मल बराबर निकलता ही रहता है। उसमें बरासी भी विकृति हुई कि उसका सारा ढांचा असुहा बना लगने लगता है। महोपाध्याय-श्रीविनयविजयरचित-शान्तसुधारसभावना के अशुचिभावनाधिकार में कहा है कि—

सच्छिद्रो मदिराघटः परिगलत्तल्लेशसङ्गाऽशुचिः,
शुच्याऽऽमृद्य मृदा बहिः स बहुशो धौतोऽपि गङ्गोदकैः।
नाऽऽधत्ते शुचितां यथा तनुभृतां कायो निकायो महा-
बीभत्सास्थिपुरीषमूत्ररजसां नाऽयं तथा शुध्यति ॥ १ ॥

—जिस प्रकार झरती हुई मदिरावाला सछिद्र घड़ा पवित्र-मिट्टी के लेप लगा-लगा कर गंगाजल से अनेक वार धोया हुआ भी पवित्र नहीं होता, उसी प्रकार अत्यन्त विकृत दुर्गन्धमय हाड, मांस, मल, मूत्र, शुक्र, शोणित, आदि से भरा हुआ शरीरधारियों का यह शरीर स्नान, वस्त्र, आभूषण, आदि बाह्य संस्कारों से कभी शुद्ध नहीं होता। उसकी ऐसी हालत समझ कर ही निर्मोही साधु गन्धी-काया की टाप-टीप (शोभा) के लिये अपना अमूल्य समय बरबाद नहीं करते। वास्तविक मुनि सदा उपशम जल में नहाते और 'धैर्यं यस्य पिता क्षमा च जननी' इत्यादि आत्मीय निर्दोष परिवार के सहवास में रहते हैं। इससे उनके तन, मन पर मनमुटाव (वैमनस्य), संभोग, आदि का मलिन मैल कभी नहीं चढ़ता। उक्ति भी है कि 'नाकामी मंडनप्रियः' विषयवासना से रहित साधु को शरीर की टापटीप अच्छी नहीं लगती। यों तो सुपात्र स्त्रियों का कुलटा, धनहीनों का धनी, पंडितों का मूर्ख और साधुओं का विषयी लोग उपहास या निन्दा करते रहते हैं लेकिन उनके उपहास से वास्तविक वस्तुस्थिति कभी दूषित या अनुचित नहीं हो सकती। खाली शरीर को साफ रखने से कोई सुधारा नहीं होता, सुधारा होने के लिये दिल को भी स्वच्छ रखना होगा। किसी कविवरने कहा भी है कि—

शुद्धितें, मीन पीयें पय बालक, रासभ अंग विभूति लगाये।
राम कहे शुक, ध्यान गहे बक, भेड तिरे पुनि मुंड मुंडाये॥

वस्त्र बिना पशु, व्योम चले खग, व्याल तिरे नित पौन के खाये।
ए तो सभी जड़ रीति निचच्छन, मोक्ष नहीं निन तत्त्व के पाये॥१॥

मलाविल वस्त्रों मे जू पड़ जाना या नीलफूल आ जाना स्वाभाविक है। इसलिये जीव-रक्षा के निमित्त वसनधारी साधुओं को चर्बीवाले साबून से नहीं, किन्तु शुद्ध सोडा या शुद्ध साबून से कपड़ों को यतना पूर्वक धोकर साफ कर लेने मे किसी तरह की बाधा नहीं है, शोभा के लिये नहीं धोना चाहिये। इसी तरह शुद्ध वस्तु से पाओरिया रोग की निवृत्ति के लिये दाँतों को साफ कर लेना भी अनुचित नहीं, हितकर है। गृहस्थ विकारी, मलिन, सभोगादि सयोगों मे रहता है और बालबच्चों के मोह मे पड़ कर उनको रमाता है। इससे वह व्यवहार-दृष्टि से शरीर की बाह्य सफाई किये बिना पूजा, प्रार्थना या नमाज, आदि कुछ नहीं कर सकता और वह भी पाकदिल के बिना कभी सफल नहीं होती।

९४ प्रश्न—दीवालीपर्व मे दवात, लक्ष्मी या शारदा का पूजन ब्राह्मण से कराना ठीक है? और उसमें चढाया द्रव्य कहाँ लगाना चाहिये?।

उत्तर—दीवालीपर्व की आराधना भाव और द्रव्य दो तरह से की जाती है। तेला की तपस्या मे तेरस, चौदस और अमावास्या, इन तीन दिन तक पौषध में या बिना पौषध के परमेष्ठी का जाप या स्वाध्याय ध्यान करना, प्रतिपदा के दिन

प्रात काल प्रतिक्रमण किये बाद बड़ा गौतमरासा सुन या बाच कर पारणा करना, अगर समाधि हो तो प्रभुपूजा किये बाद पारणा करना, यह दीवाली की भावाराधना है जो धार्मिकदृष्टि लिये हुए है। तेला करने की शक्ति न हो तो आदि अन्त में एकाशना और बीच में उपवास, यह भी शक्ति न होतो तीनों दिन आयबिल, निविगइ, एकाशना या नियासना से भी इसकी आरधना की जा सकती है। कर्मनिर्जरा के लिये यही निष्काम आराधना समझना चाहिये।

दृढधर्मानुयायी श्रावक भी व्यवहार मर्यादा को नहीं टाल सकता। उसका पालन उसे करना ही पड़ता है। पालन न करने मे उसकी निन्दा होना सभव है। सूत्रकारों का भी कहना है कि 'लोगविरुद्धचाओ' श्रावक को लोकविरुद्ध कार्यों का त्याग करना, और लोकाचार का पालन करना चाहिये। अतएव व्यावहारिक मर्यादा से अच्छे चोघडिया में लक्ष्मीपूजा, शारदा (बही) पूजा, दवातपूजा, दीवा लगाना, गादी उठा झाटक कर फिर बिछाना, और मिठाई बाटना आदि जैनविधि से करना कराना दीवाली की द्रव्य आराधना है जो लोकदृष्टि से हानिकारक नहीं है। इन कार्यों के करने कराने में श्रावकों को यतना और उपयोग अवश्य रखना चाहिये–जिससे जीव हिंसा न हो सके। लोकदृष्टि से ससार के निमित्त लक्ष्मी और शारदा की पूजा उसके सम्यक्त्वधर्म मे बाधक नहीं है, धर्म-कामना से करे तो बाधक है।

इससे साफ जाहिर हो जाता है कि–अभयदेवसूरिजीने चोथी थुई को निश्चय से नई मान कर चोथी थुई से चैत्यवन्दन मानने या करनेवालों के प्रति अपनी हार्दिक अरुचि प्रगट की है और प्रसिद्ध पाच दण्डकों, तीन स्तुतियों तथा प्रणिधानपाठ से उत्कृष्ट चैत्यवन्दन करना इसको अपना मान्य सिद्धान्त रक्खा है। आचार्य अभयदेवसूरिजी पूर्वाचार्यों और शास्त्रीय-मार्ग के न विरोधी थे, न उनसे विरुद्ध कथन करनेवाले थे। इसीसे उन्होंने 'चतुर्थस्तुति किलार्वाचीना' इस वाक्य से चोथी थुइ को निःसन्देह नई ठहराई और 'किल' शब्द का प्रयोग करके चोथी थुई माननेवालों के प्रति अपनी अरुचि दिखलाई है। इसलिये तीन थुई से चैत्यवन्दन करने की प्ररूपणा को उत्सूत्र कहने या समझनेवाले लोग आगमाज्ञा के विराधक और भवाभिनन्दी जीव हैं।

प्रश्नकार–मुनिसत्तम–श्रीहर्षविजयजी, मु० थराद।

९६ प्रश्न—नागकुमार के इन्द्र धरणेन्द्र के कितनी अग्रमहिषियाँ हैं?।

उत्तर—भगवतीसूत्र के १० वें शतक के ५ वें उद्देशा में लिखा है कि–"धरणस्स णं भंते! नागकुमारिंदस्स नागकुमाररन्नो कति अग्गमहिसीओ पन्नत्ताओ?, अज्जो! छ अग्गमहिसीओ पन्नत्ताओ, तंजहा–इला सुक्का सदारा सोदामणि इंदा घणविज्जुया। तासि णं एगमेगाए देवीए छ छ देवीसहस्सा परिवारो पन्नत्तो।"

—भगवन् ! नागकुमारेन्द्र नागराजा धरणेन्द्र के कितनी अग्रमहिषियाँ हैं ? । प्रभु फरमाते हैं कि—आर्यो ! ' धरणेन्द्र के इला १, शुक्रा २, सदारा ३ सौदामिनी ४, इन्द्रा ५ और घनविद्युता ६ ये छ अग्रमहिषियाँ हैं जो छ-छ हजार देवियों के परिवारवाली हैं । ' इनके अलावा भी ' ह्रींधरणेन्द्रवैरुट्या, पद्मादेवीयुतायते ' इस स्तोत्र मे वैरुट्या और पद्मावती ये भी धरणेन्द्र की अग्रमहिषी जान पड़ती हैं । मालूम होता है कि उक्त छ अग्रमहिषियों में से ये किसीके नामान्तर हों ।

९७ प्रश्न—ससार को समुद्र की उपमा किस तरह घटाई जा सकती है ? ।

उत्तर—तत्त्वार्थसूत्र की सम्बन्धकारिका की टीका मे श्री-देवगुप्तसूरिजी लिखते हैं कि–' नरकतिर्यङ्मनुष्यामरगतिचतुष्टयदुस्तरविपुलपात्रः, प्रियाप्रियविरहसम्प्रयोगक्षुदभिघातादिसन्निपातप्रतिभयानेकदुःखागाधसलिल , परोपघातिक्रूरानार्यजनानेकमकरनिचरितविषमः, मोहमहानिलप्रेरणाध्मायमानगम्भीरभीषणप्रमादपातालः, नरकादिविकृतभीमवडवामुखग्रस्यमानानेकपापकर्मसत्त्वः, रागद्वेषप्रबलानिलोद्धतसजायमानवीचिप्रसृताशयवेलः । '

—ससार–सागर में नारक, तिर्यंच, मनुष्य और देव इन चार गति रूप दुस्तर बडे पात्र हैं । प्रिय का विरह, अप्रिय का सयोग, क्षुधा, अभिघात, सन्निपात भय, आदि नाना प्रकार का

चोथु खखेरे बीजु ना हेरे, तो शिवसुखडां आगेजी ।
चोवीस जिनवर महित–पुरदर, सेव करो मन–रागेजी ॥२॥

—अपने बुद्धिबल का नाश होने पर कुमतिने हरामखोर कषाय रूप महाचोरों को खड़ा किया । उन्होंने आत्मविडम्बना करना शुरू की और चेतन की चेतना हरलेने की चेष्टा की। सम्यक् चारित्रने सत्–क्रिया रूप करियाणा लिया । सम्यग्दर्शनने उसकी सावधानी से निगरानी की। सम्यग्ज्ञानने उसको जाहेरात में रक्खा, तपने सम्यक् चारित्र के सहाय से कषाय चोरों को ऐसा खखेर दिया कि फिर कभी वे किसीको न मिल सके और न लूट सकें, एव कषाय भावों का सर्वथा नाश करके शिवसुख को सामने लाकर रक्खा। उन कषायविजयी और इन्द्रों से पूजित चोवीस जिनेश्वरों की शुभ–भाव से सेवा करो ।

जेहने पाखे जग अध भाखे, लोकालोक नवि जाणेजी ।
सूरिने वदी राजेन्द्र नदी, दरमन वेरीने घाणेजी ॥
मध्ये साची वात न काची, मूढपणे न उवेखोजी ।
गुरुगमसेती तत्त्वने कहेती, दीपविजय मति लेखोजी ॥ ३ ॥

—जिसके विना सारा जगत् अन्धा है और जिसके बिना लोकालोक का स्वरूप भलीभाति नहीं जाना जा सकता, ऐसी श्रुतज्ञान सम्पन्न राजेन्द्र (जिनवाणि) को सानन्द वन्दन करो–जिससे कर्म रूप शत्रु का घाण (नाश) हो जाता है तथा जिस श्रुत में कही हुई वातें कभी नहीं, किन्तु वास्तविक सत्यता को

लिये हुए हैं उन बातों की अपनी मूर्खता से उपेक्षा न करो, क्योंकि वह श्रुत गुरुगम से तत्त्व का दर्शक है। कर्त्ता कहते हैं कि उसको बुद्धि से समझो और सर्द्दहो–विश्वास रक्खो।

९९ प्रश्न—घेटी व ऊँटनी का दूध अभक्ष्य है या भक्ष्य?

उत्तर—घेटी और ऊँटनी का दूध अभक्ष्य है ऐसा शास्त्रकारों का मन्तव्य है। श्रीवीराचार्यरचित–पिंडनिर्युक्तिटीका में लिखा है कि—

अविला–करही खीरं, लसुण–पलंडू सुरा य गोमासं।
वेयसमए वि अमयं, किंचि अभोज्जं अपेयं च ॥ १ ॥"

अविलाकरभीक्षीरम्–गड्डरीकोष्ट्रीदुग्धं तथा लसुणपलंडुत्ति कन्दविशेष. शाकविशेषश्च तथा सुरा–मद्यं च समुच्चये तथा गोमासं–सुरभी पलं। एतत्किमित्याह वेदा–ऋग्वेदादयो ब्राह्मणसम्बद्धाश्चत्वार. शास्त्रविशेषाः, समयस्तु शेषदर्शनिना सिद्धान्तस्तस्मिन्नपि न केवलं जिनशासने इत्यपि शब्दार्थः। अमतं–ग्राह्यतया अनभिप्रेतं शिष्टानामिति।

—घेटी और ऊँटनी का दूध, लहसन, प्याज, मदिरा और गोमास ये केवल जैनशास्त्रों में ही निषिद्ध नहीं है। किन्तु ऋग्वेदादि ब्राह्मण–शास्त्रों और अन्य सिद्धान्तों में भी शिष्ट पुरुषों के लिये त्याज्य बतलाये हैं। अत घेटी तथा करभी (ऊंटिन) का दूध अभक्ष्य और त्याज्य समझना चाहिये।

१०० प्रश्न—रोगापनयन के लिये जिस प्रकार भोजन आदि से वैद्य का सन्मान किया जाता है, उसी तरह इस लोक की कामना के लिये यक्षादि देवों की पूजा मान्यता करने में क्या मिथ्यात्व लगता है ?।

उत्तर—शास्त्रदृष्टि से तो अदेव को देव, कुगुरु को गुरु और कुधर्म को धर्म मानने से और उनको मोक्ष प्रदाता मानने से ही मिथ्यात्व लगता है, अन्यथा नहीं। परन्तु संसार में असमझ लोग अधिक हैं, प्रायः वे गतानुगतिक होते हैं और उन्हें भले बुरे की पहिचान नहीं होती। ऐसे लोग देखादेखी से मिथ्याभाव को अपना लक्ष्यबिन्दु बना लेते हैं और यह मिथ्या प्रवृत्ति उनकी सन्तति में भी असाध्य रोग के समान प्रचलित रहती है। अगर सम्यक्त्वधारी इह लोकार्थ भी यक्षादि देवों की आराधना करें तो उसको देख कर असमझ लोग ऐसा विचार करने लगते हैं कि–विशुद्ध–सम्यक्त्वी भी यक्षादि देवों की पूजा आराधना करते हैं, तो ये देव प्रभावशाली हैं और इनकी सेवा अवश्य वांछित फल की दाता है। इसलिये इन यक्षादि देवों की आराधना से अपने को भी इच्छित फल मिलेगा।'

इस प्रकार गतानुगतिक से मिथ्या–परम्परा की अभिवृद्धि हो कर अनेक भद्रप्रकृतिक लोग मिथ्याभावी बन जाते हैं। अत एव सम्यक्त्वधारियों को इस लोक की कामना की सिद्धि के लिये भी यक्षादि देवों की पूजा मान्यता और आराधना नहीं

करनी चाहिये। यदि करे तो मिथ्यात्व दोष लगता है और उसको बोधिधर्म नहीं मिलता। श्राद्धप्रतिक्रमणवृत्तिकारने स्पष्टरूप कहा भी है कि—

> अन्नेसिं सत्ताणं, मिच्छत्त जो जणेइ मूढप्पा।
> सो तेण निमित्तेण, न लहइ बोहिं जिणाभिहियं ॥१॥

—अन्य प्राणियों के लिये जो मूढात्मा मिथ्यात्व का प्रसंग खड़ा करता है, वह अन्य आत्माओं को मिथ्यात्वी बनाने के कारण जिनेन्द्रभाषित बोधिलाभ से वंचित रहता है, अर्थात्—उसे सम्यक्त्व-धर्म कभी नहीं मिलता। यद्यपि श्रीकृष्ण, रावण, श्रेणिक, अभयकुमार, सुलसा, सुभद्रा, आदिने भी रिपुविजय, सन्तानप्राप्ति और विपत्तिविलय के निमित्त अपवाद से देवाराधना की है। परन्तु उनका आश्रय लेकर किसी सम्यक्त्वदृष्टि को यक्षादि देवों की आराधना करनी लाभ कारक नहीं है। क्यों कि 'जाणिज्ज मिच्छदिट्ठि, जे य परालंबणाइ घिप्पंति।' पतित होने के लिये जो दूसरों का आलम्बन लेता है वह पुरुष भी मिथ्यात्वी है।

१०१ प्रश्न—ढाई-द्वीप (मनुष्यक्षेत्र) पैंतालीस लाख योजन का माना गया है वह किस प्रकार मिलता है ?।

उत्तर—१ लाख योजन का जम्बूद्वीप, पूर्व २ लाख तथा पश्चिम २ लाख एवं ४ लाख योजन का लवणसमुद्र, पूर्व ४ लाख तथा पश्चिम ४ लाख एवं ८ लाख योजन का धातकी-

खण्डद्वीप, पूर्व ८ लाख तथा पश्चिम ८ लाख एवं १६ लाख योजन का कालोदधि और पूर्व ८ लाख तथा पश्चिम ८ लाख एवं १६ लाख योजन का पुष्करार्धद्वीप है। इस प्रकार सब को जोड़ने से ४५ लाख योजन समझना चाहिये। इसीक्रम से ढाई-द्वीप के पूर्व-पश्चिम तथा दक्षिण-उत्तर के द्वीप, वन, पर्वत, द्रह, कूट, नदियाँ, सुमेरु, आदि योजनों को जोड़ने से बराबर ४५ लाख योजन होते हैं।

प्रश्नकार-मेहता भेरूसिंह बी ए सिवामऊ (मालवा)

१०२ प्रश्न—प्रात काल चार बजे रात्रि को उठ कर स्तोत्र वगैरह का पठन-पाठन हो सकता है या नहीं?।

उत्तर—स्तुति, स्तोत्र, छन्द, स्तवन, प्रभाती, नवस्मरण, गौतमरासा, आदि परमेष्ठी के प्रशसात्मक माने गये हैं, इसलिये निशावसान मे चार बजे उठ कर अपने अभ्युदय के लिये उनका पठन-पाठन करना लाभ कारक है। उपदेशतरंगिणी के द्वितीय तरग में लिखा है कि—

विमुच्य निद्रां चरमे त्रियामा-यामार्धभागे शुचिमानसेन।
दुष्कर्मरक्षो दमनैकदक्षो, ध्येयस्त्रिधा श्रीपरमेष्ठिमन्त्र. ॥१॥

—श्रावक को रात्रि के अन्तिम प्रहर के आधे भाग में निद्रा का त्याग करके पवित्र मन, वचन, कायारूप त्रिधा भक्ति से दुष्कर्मरूप राक्षस का नाश करने में समर्थ परमेष्ठिमन्त्र का

ध्यान करना चाहिये । पचाशकग्रन्थ के विवरणकारने भी कहा है कि—

नमस्कारेण–परमेष्ठिपञ्चकनमस्क्रियया आत्यन्तिकतद्‌बहुमानकार्यभूतया परममङ्गलार्थया वा विबोधा जागरण कार्य इति।

—अत्यन्त बहुमान करते हुए, सर्वोत्कृष्ट मगलार्थक पच परमेष्ठि (अरिहत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु) को नमस्कार करने की क्रिया से श्रावक को निद्रा का परित्याग अवश्य करना चाहिये । श्राद्धदिनकृत्यप्रकरण के प्रथम द्वार में कहा है कि—

निसाविरामम्मि विबुद्धएण, सुसावएण गुणमायरेण ।
देवाहिदेवाण जिणुत्तमाण, किच्चा पणामो विहिणायरण ॥८॥

सिज्जट्ठाण पमत्तूण, चिट्ठेज्जा धरणीयले ।
भावबधुजगन्नाह, णमोक्कार तओ पढे ॥ ९ ॥

—रात्रि के अन्त मे चार घडी रात्रि बाकी रहते नित्य गुणनिधि श्रावक को निद्रा छोड कर देवाधिदेव श्रीजिनेश्वरों को सविधि वन्दन करके शय्या से उठ कर भूमि पर बैठना और भावबन्धु–जगदीश्वर–परमेष्ठी मत्र का ध्यान करना चाहिये । धर्मसग्रह, श्राद्धविधि, धर्मबिन्दु, श्रावकधर्मविधिप्रकरण, श्राद्ध-

गुणविवरण, श्रावकहितशिक्षागम, आदि ग्रन्थों के आधार पर जिनहर्षरचित-'श्रावककरणी-सज्झाय' में भी कहा है कि—

श्रावक तु उठे परभात, चार घड़ी ले पाछली रात।
मनमा समरे श्रीनवकार, जिम पामो भवसागर पार ॥ १ ॥

१०३ प्रश्न—जिनेश्वरों का समवसरण बराबर होता है या न्यूनाधिक ?, और वह कितने दिन तक रहता है ?।

उत्तर—जिनेश्वर-समवसरण पश्चानुपूर्वी से अजितनाथ से नेमिनाथ तक दो दो कोश कम होता है । जैसे-श्रीऋषभदेव का ४८ कोश, अजितनाथ का ४६, संभवनाथ का ४४, अभिनन्दन का ४२, सुमतिनाथ का ४०, पद्मप्रभ का ३८, सुपार्श्वनाथ का ३६, चन्द्रप्रभ का ३४, सुविधिनाथ का ३२, शीतलनाथ का ३०, श्रेयांसनाथ का २८, वासुपूज्य स्वामी का २६, विमलनाथ का २४, अनन्तनाथ का २२, धर्मनाथ का २०, शान्तिनाथ का १८, कुंथुनाथ का १६, अरनाथ का १४, मल्लिनाथ का १२, मुनिसुव्रतस्वामी का १०, नमिनाथ का ८, नेमिनाथ का ६, तथा पार्श्वनाथ का ५ और श्रीमहावीरस्वामी का ४ कोश का समवसरण होता है ।

सौधर्मेन्द्र का बनवाया समवसरण ८ दिन, अच्युतेन्द्र का बनवाया १० दिन, ईशानेन्द्र और ज्योतिष्केन्द्र का बनवाया १५ दिन, सनत्कुमारेन्द्र का बनवाया १ महीना, माहेन्द्र का

बनवाया ७ महीना, महेन्द्र का बनवाया ४ महीना तक रहता है । समवसरण में प्रथम गढ़ की प्रति-दिशा में दश-दश हजार, द्वितीय गढ की प्रति-दिशा में पाच-पाच हजार और तृतीय गढ की प्रति-दिशा में पाच-पाच हजार, इस प्रकार तीनों गढ की कुल अस्सी हजार सीढियॉ होती हैं ।

समवसरण में साधु, साध्वियॉं और वैमानिक देवियॉ पूर्व-दिशा से प्रवेश कर अग्निकोण में, भवनपति देवियॉ, ज्योतिष्क देवियॉ और व्यन्तरदेवियॉ दक्षिण-द्वार से प्रवेश कर नैऋत्य-कोण में, भवनपतिदेव, व्यन्तरदेव और ज्योतिष्क देव पश्चिम-द्वार से प्रवेश कर वायव्यकोण में और वैमानिकदेव, मनुष्य तथा मनुष्य-स्त्रियॉं उत्तर-द्वार से प्रवेश कर ईशानकोण में बैठते हैं । इनमें चारों निकाय की देवियॉ और साध्वियॉ खडी रह कर तथा आवश्यकनिर्युक्ति के लेखानुसार साधु उत्कटिकासन से प्रभु की देशना सुनते हैं, उन्हें प्रभु के अतिशय से तनिक भी न थकावट आती है और न कुछ खेद उत्पन्न होता है ।

प्रश्नकार—कुन्दनमलडागी, निम्बाहेडा (टोंक)

१०४ प्रश्न—जमीन कहॉं तक अचित्त मानी गई है ? ।

उत्तर—जिस पर मनुष्य-पशु आदि का गमनागमन नहीं होता वहॉं की जमीन ४ अगुल, राजमार्ग की ५ अगुल, गलियों की ७ अगुल, भूमिगृह की १० अगुल, मल-मूत्र की १५ अगुल, पशुशाला की २१ अंगुल, चूल्हा, या भट्टी की ३२

अगुल, ईंट-चूना पकाने की १२० अगुल और बरतन पकाने की ३६ अगुल नीचे की जमीन सचित्त और उसके ऊपर की अचित्त होती है ऐसी बहुश्रुत आचार्यों की मान्यता है। श्रीमेरुतुगसूरिकृत-पिंडविशुद्धिटीका और कीर्तिविजयोपाध्यायकृत-विचाररत्नाकरग्रन्थ में लिखा है कि—

कठिना पृथ्वी शीतातपादिशस्त्रयोगे उपर्यङ्गुलमेक प्रासुका, अल्पकठिनात्यङ्गुलचतुष्क प्रासुका, अकठिनाङ्गुलाष्टकम् । ग्रामोर्वी चाधिकापि प्रासुका, चतुष्पदादिस्थाने च मुण्डहस्त प्रासुका । मलमूत्रा तपोष्णाश्वादिना च यावती भाविता, वह्निस्थाने च वह्निना यावती भाविता सा प्रासुका, महानगरस्थाने च हस्तमेक प्रासुका, महानगरादिस्थानेऽपि द्वादशवर्षशून्ये मलाद्यभावात्सर्वा सचित्ता। क्षीरवृक्षाधश्च यत्र जन्तूनामसञ्चार सदा छाया तत्र मिश्रा, क्षीरवृक्षाणा मधुरत्वेनाप्यायकत्वात् क्षीरवृष्टिनातशीतादिभि शस्त्रत्वाच । अन्यत्र तु जनामञ्चारे छायाबहुले स्निग्धमजरे उपरितन रूक्ष रजो मुक्त्वा सर्वा सचित्ता, क्वापि क्वापि मिश्रापि सचित्ता। यद्यतयश्चैत्ये शालाया च प्रवेशे पादौ रजोहरणन प्रमार्जयन्ति तत्कापि प्रदेशे सचित्त मिश्र वा रजो भविष्यतीति हेतो. । तथा सचित्ता अचित्ता वा भूमि सचित्ताम्बुयोगे जाते कियत्काल मिश्रा स्यात्ततो या सचित्ता सा सचित्ता, या चाचित्ता साऽचित्तैवेति ।

—शीत, आतप, आदि शस्त्र योग से कठिन पृथ्वी ऊपर एक अगुल, अल्प कठिन ४ अगुल और पोची पृथ्वी ८ अगुल तक और पशुओं के रहने की जमीन मूठा–हाथ तक अचित्त होती है। मल, मूत्र, ताप, सूर्यकिरण और अग्नि से जितनी जमीन भावित हो उतनी अचित्त तथा बडे नगर की भूमि एक हाथ तक अचित्त होती है। महानगरादि–स्थान यदि बारह वर्ष तक ऊजड रहा हो और वहाँ मल–मूत्रादि का अभाव रहा हो तो वह पृथ्वी फिर सचित्त हो जाती है। क्षीरवृक्ष के नीचे की पृथ्वी पर मनुष्य आदि का गमन आगमन न हो सदा छाया रहती हो, तो वह क्षीरवृष्टि, वायु, शीत, आदि शस्त्र–परिणत होने से भी मिश्र (सचित्ताचित्त) मानी जाती है। लोगों के गमनागमन से रहित, सघन छाया और सजल जमीन के ऊपर धूल को छोड कर सभी पृथ्वी सचित्त है, पर धूल भी कहीं कहीं मिश्र या सचित्त होती है। जिनालय या उपाश्रय के प्रवेश–स्थान की जमीन जहाँ साधु रजोहरण से पैर पूजते हैं, वहाँ की धूल सचित्त अथवा मिश्र है। इसी प्रकार सचित्त या अचित्त पृथ्वी जल के सयोग से कुछ काल तक मिश्र रहती है फिर सचित्त पृथ्वी सचित्त और अचित्त पृथ्वी अचित्त हो जाती है।

१०५ प्रश्न—श्रीकृष्ण कितने भव करके मोक्ष जायँगे ?।

उत्तर—श्रीकृष्णने मुख्यवृत्त्या चारित्रपद की आराधना करके तीर्थंकरगोत्र का बन्ध किया है। वे पाचवें भव मे समस्त

कर्मों का क्षय करके मोक्ष जायँगे । श्रीयशोविजयोपाध्यायगणि रचित–कर्मप्रकृतिटीका में लिखा है कि—

नरयाउ नरभवम्मि, देवो होऊण पचमे कप्पे ।
तत्तो चुओ समाणो, बारसमो अममतित्थयरो ॥

—श्रीकृष्ण का भव, तीसरी नरक, मनुष्य, पाचवा स्वर्ग और भरतक्षेत्र के गङ्गाद्वारपुर मे पाचवे भव मे अमम नामके बारहव तीर्थङ्कर होंगे–मोक्ष जायँगे ।

१०६ प्रश्न—चार प्रकार के मेघ कौन कौन से हैं ? ।

उत्तर—पुष्करावर्त्त, प्रद्युम्न, जीमूत और झिमिक ये चार प्रकार के मेघ हैं । श्रीविनयविजयोपाध्यायने लोकप्रकाश के २९ वें सर्ग मे लिखा है कि—

तत्राद्यस्यैकया वृष्ट्या, सुस्निग्धा रसभाविता ।
भवत्यब्दायुत भूमिर्धान्याद्युत्पादनक्षमा ॥ ४४ ॥

द्वितीयस्यैकवृष्ट्या, भूर्भाव्यतेऽब्दसहस्रकम् ।
वृष्टे स्नेहस्तृतीयस्य, दशाब्दानि भवेद् भुवि ॥ ४५ ॥

निरन्तर प्रवृत्ताभिस्तुरीयस्य च वृष्टिभि ।
भूयसीभिर्वर्षमेक, सुस्नेहस्तिष्ठति न वा ॥ ४६ ॥

—एक बार की वर्षा से दश हजार वर्ष तक भूमि सुस्निग्ध, सरस और धान्यादि उत्पादन योग्य बनी रहे वह

' पुष्करावर्त्त, ' एक बार की वर्षा से एक हजार वर्ष तक भूमि उपजाऊ बनी रहे वह ' प्रद्युम्न, ' एक बार की वर्षा मे दश वर्ष तक भूमि उपजाऊ रहे वह ' जीमूत ' और बार-बार वर्षा होने से एक वर्ष तक भूमि उपजाऊ रहे अथवा नहीं भी रहे वह ' झिमिक ' मेघ कहाता है। झिमिक मेघ से लोगों की इच्छा पूर्ण होती है और कभी नहीं भी होती।

१०७ प्रश्न—श्रावक के त्रिविध (तीन करण तीन योग से) प्रत्याख्यान होता है या नहीं ?

उत्तर—कुल-व्यवहार से जिस वस्तु के खाने का सर्वथा निषेध है और जो वस्तु जीवन पर्यन्त कभी वापरने मे नहीं आती, अथवा जिस वस्तु से सर्वथा इच्छा हट गई है उसका त्रिविध प्रत्याख्यान श्रावक कर सकता है। लोकप्रकाश के ३० वें सर्ग में लिखा है कि—

स्वयम्भूरमणाम्भोधि-मत्स्यमांसाशनादिकम् ।
त्रिविध त्रिविधेनापि, प्रत्याख्याते न कोऽपि यत् ॥ ११ ॥

—स्वयम्भूरमण-समुद्र के मत्स्य का मांस आदि के भक्षण सम्बन्धी प्रत्याख्यान श्रावक त्रिविध-त्रिविध योग से कर सकता है। आदि शब्द से स्वयम्भूरमण-समुद्र की वस्तुओं का भी त्रिविध प्रत्याख्यान होना समझना चाहिये।

१०८ प्रश्न—प्राणियों के अभ्युदय-कारक चार प्रकार के काल कौन से हैं ?।

उत्तर—श्रवणसम्मुखी १, मार्गसम्मुखी २, धर्मयौवन ३ और यथाप्रवृत्तिकरण ४, प्राणियों के अभ्युदय करनेवाले ये चार काल हैं। अव्यवहारराशि (निगोद) में अनन्तकाल पर्यंत परिभ्रमण करते-करते और उनमें असह्य दुःखों का अनुभव करते-करते अकामनिर्जरा के योग से व्यवहारराशि में आये हुए जीवों के मोक्षगमनार्थ दो पुद्गलपरावर्त्तन काल बाकी रहता है। तब उनको विवेक-हीनता से धर्म-श्रवणेच्छा होती है जो जीवों को धर्म के सम्मुख करती है, वह 'श्रवणसम्मुखीकाल' कहाता है। संसार में भ्रमण करते हुए जब डेढ़ पुद्गलपरावर्त्तन काल बाकी रहता है तब जीवों के पूर्वपरिणाम की अपेक्षा अपर परिणाम की अधिक विशुद्धि से मार्गानुसारी गुणों का संग्रह करने के लिये बुद्धि पैदा होती है और वे यथा शक्य धर्मपथ में प्रविष्ट हो अपनी समुन्नति करते हैं यही 'मार्गसम्मुखीकाल' कहाता है। आत्म-परिणाम की विशुद्धि होने पर अकामनिर्जरा के द्वारा कर्मों की स्थिति को कम करते हुए जब एक पुद्गलपरावर्त्तन काल शेष रह जाता है तब प्राणियों में विविध धर्मों के आडम्बरों को हेय समझ कर यथार्थ धर्म का आश्रय लेने की अभिलाषा होती है और वे उसके सम्पादनार्थ शक्तिभर प्रयत्न करते हैं। वह 'धर्मयौवनकाल' कहता है। धर्मयौवनकाल में द्रव्य, क्षेत्र आदि के अनुसार भव्यत्व-दशा के परिपक्व होने से जो परिणाम विशुद्धि होती है, उसके बल से आयुष्कर्म के बिना सात

कर्मों की दीर्घस्थिति कम हो कर पल्योपमासख्येय भाग हीन एक कोटाकोटी सागरोपम स्थिति बाकी रहती है, तब जीव अपने विकास के लिये पूर्ण रूप से शक्तिशाली बन कर स्वपर का कल्याण करते हैं, वह **यथाप्रवृत्तिकरणकाल** कहा जाता है।

१०९ प्रश्न—श्रावक यदि अनशन करना चाहे तो उसकी विधि किस प्रकार है ?।

उत्तर—निरवद्य-भूमि पर कम्बल या डाभ का सथारा करना। स्थापनाचार्य को ऊँचे आसन पर रखना। खड़े होकर ईशानकोण के तरफ 'इरियावहि०, तस्स उत्तरी०, अन्नत्थ०' कह कर एक लोगस्स० का कायोत्सर्ग करना और पार कर लोगस्स० कहना। बाद में तीन खमासमण देकर 'इच्छाकारेण सदिसह भगवन्! चैत्यवन्दन करु? इच्छ' कह कर सामान्य या विशेष रूप से चैत्यवन्दनविधि करना। फिर गुरु या स्थापनाचार्य को द्वादशावर्त्त वन्दन करना।

बाद में जिस दिशा में गुरु हों उस तरफ 'नमुत्थुण०' कहना, उसमें 'ठाण सपत्ताण' के स्थान पर 'ठाण सपाविओ कामस्स और अन्त में 'मम धम्मायरियस्स मम धम्मोवएसगस्स' यह पद बोलना। फिर 'एक-एक, दो-दो या अधिक दिन का द्रव्यादि का अभिग्रह, अथवा प्रत्याख्यान न पारू वहाँ तक आहारादि न वापरू। अथवा पापारम्भ और व्यापारादि नहीं करू' ऐसी प्रतिज्ञा करना।

तदनन्तर गुरु या स्थापनाचार्य के सामने 'इच्छामि खमा०, इच्छाकारेण०, सागारिय अणसण गहिमाऊ ?, इच्छं, इच्छामि ख०, इच्छाकारेण स० सागारिय अणसण करूं ? इच्छं, इच्छामि ख०, इच्छाकारेण० सागारिय अणसण उचरावो ?' कह कर गुरुमुख से, यदि गुरु न हो तो स्व नवकार पूर्वक नीचे का पाठ तीन बार उचरना—

अहन्न भंते ! तुम्हाणं समीवे सागारियमणसणं उवसंपज्जामि। दव्वओ खित्तओ कालओ भावओ। दव्वओणं इमं सागारियमणसणं, खित्तओणं इत्थ अन्नत्थ वा, कालओणं इगदिण बीयदिण तइयदिणाइ वा पासखमण मासखमण वा, भावओणं जाव गहणं न गहिज्जामि, जाव छलेणं न छलिज्जामि, जाव सन्निवाएणं न भविज्जामि, अन्नेण केणवि रोगायंकेणं एस परिणामो न परिवडइ ताव मेयं इमं सागारियमणसणं उवसंपज्जामि। तिविहं पि आहारं असणं खाइमं साइमं पाणाहारं पडिमहिय पच्चक्खामि अन्नत्थणाभोगेणं सहस्सागारेणं महत्तरागारेणं सव्वसमाहिवत्तियागारेणं वोसिरामि। अरिहंतसक्खियं सिद्धसक्खियं साहुसक्खियं देवसक्खियं अप्पसक्खियं उवसंपज्जामि, नित्थारपारगा होह।

जं जं मणेण बद्धं, जं जं वयणेण भासियं पावं।
जं जं काएण कयं, मिच्छामि दुक्कडं तस्स ॥ १ ॥

अरिहंतो महदेवो, जावज्जीव सुमाहुणो गुरुणो ।
जिणपन्नत्त तत्तं, इअ सम्मत्त मए गहिय ॥ २ ॥

इसके बाद समस्त जीवों के साथ क्षमा याचना करना और तीव्र भावना हो तो पच महाव्रत धारण करना । यदि महाव्रत लेने की शक्ति न हो तो निरतिचार श्राद्धव्रत पालन करना । घरधन्धा की चिन्ता छोड़ कर पच परमेष्ठी के ध्यान में निमग्न रहना तथा चउसरणपइन्नय, आउरपच्चक्खाणपइन्नय, भत्तपच्चक्खाणपइन्नय, सथारगपईन्नय, आराहणापइन्नय और आराधणापताका इन प्रकरणों का स्वाध्याय करना या दूसरों के मुख से सुनते रहना । यह विधि बहुश्रुत आचार्यों की आचरणा से लिखी गई है ।

११० प्रश्न—चक्रवाल समाचारी का अर्थ क्या है ?, वे कितनी हैं और उनका सामान्य स्वरूप क्या है ? ।

उत्तर—' चक्रवाल ' शब्द का अर्थ है—अवश्य कार्य या नित्यकर्म । इसका फलितार्थ यह है कि निरन्तर अवश्य करने योग्य समाचारी (साधु नियम) अर्थात् साधुओं के कार्य रूप में परिणत करने के लिये जो आवश्यकीय नियम हैं, उनको ' चक्रवालसमाचारी ' कहते हैं । वह दश प्रकार की है—

इच्छा मिच्छा तहकारो, आवस्सिया य निसीहिया ।
आपुच्छणा पडिपुच्छणा, छंदनिमंतोवसपया ॥ १ ॥

१ इच्छाकार–अपनी इच्छा से योग्य कार्य करते रहो ऐसा गुरु का आदेश मिलना। २ मिथ्याकार–अज्ञानवश या निरुपयोग से कोई भूल हो जाय उसका मिच्छामि दुक्कड देना। ३ तथाकार–सूत्रार्थ ग्रहण करते समय या गुरु आज्ञा मिलने पर 'तहत्ति' कहना। ४ आवश्यकी–करने योग्य कार्य को करना, अथवा उपाश्रय के बाहर जाते हुए आवस्सिही कहना। ५ नैषधिकी–जिनप्रवचन–निषिद्ध कार्य को न करना अथवा उपाश्रय में प्रवेश करते हुए निसीहि कहना। ६ आपृच्छना–गुर्वादिक से पूछे विना कोई कार्य नहीं करना। ७ प्रतिपृच्छना–तप, जप स्वाध्याय, ध्यान, अभ्यास, आदि सभी कार्य गुरु से बार–बार पूछ कर करना। ८ छन्दना–आहारादि वस्तु के ग्रहण करने की गुरु से प्रार्थना करना। ९ निमन्त्रणा–आपको जो वस्तु चाहिये वह लाऊँ ऐसा गुरु से निवेदन करना। १० उपसपत्–ज्ञानादि गुण प्राप्त करने के लिये अन्य गच्छीय सुविहित गीतार्थों की सेवा करना या गुरु आज्ञा से उनके पास रहना। इन समाचारियों का विशेष विस्तार ओघनिर्युक्ति टीका और प्रवचनसारोद्धारवृत्ति से जानना चाहिये।

१११ प्रश्न—जिनालय में जिनप्रतिमा की दृष्टि कहाँ किसी स्थान पर रखना ?।

उत्तर—जिनालय के भीतरी द्वार के ६४ भाग करना, उसके ५५ वें भाग में जिनप्रतिमा की दृष्टि रखना। अथवा

द्वार की देहली और उत्तरावटी के मध्य के आठ भाग कर ऊपर का आठवा भाग छोड देना, उसके नीचे के सात वें भाग के आठ भाग करके, आठवा भाग छोड कर सात वें भाग में प्रतिमा की दृष्टि रखना। गृहमन्दिर में भी यही नियम समझना चाहिये, ऐसा वास्तुसारप्रकरण और प्रासाद–मंडन में लिखा है। दिगम्बरजैनों की मान्यता है कि ' द्वार के ९ भाग कर, नीचे के ६ और ऊपर के २ भाग छोड कर, ७ वें भाग के ९ भाग करना, उसके ७ वें भाग में प्रतिमा की दृष्टि रखना। वास्तुसारप्रकरण में लिखा है कि—

भित्तिसंलग्गबिंब, उत्तमपुरिस च सव्वहा असुह।
चित्तमय नागाय, हवंति एए सहावेण ॥ ४७ ॥

—पवासन के ऊपर भींत से अडा हुआ जिनबिम्ब और उत्तम पुरुष की मूर्त्ति स्थापन करना अशुभ है। चित्रप्रतिमा और नाग, आदि की मूर्त्ति तो स्वाभाविक भींत से संलग्न (अड़ी हुई) ही होती है, इसलिये उसका दोष नहीं है। मतलब यह है कि जिनप्रतिमा और गुरुमूर्त्ति तो भींत से आधी या एक इंच छेटी से बैठाना चाहिये, तभी वह लाभ–कारक है।

प्रश्नकार—एस् एम् जैन मु० बमन्या (मालवा)

११२ प्रश्न—पर्युषणपर्व सिवा के दिनों में कल्पसूत्र स्वाध्याय रूप में वाचा जा सकता है या नहीं ?।

उत्तर—योगोद्वाही-साधु-साध्वियों को ही कल्पसूत्र वाचने का अधिकार है, श्रावक-श्राविका को नहीं। परन्तु बालबोधमय (भाषान्तरवाला) कल्पसूत्र योग्य विधि से श्रावक श्राविका पर्युषण में या उनके सिवा अन्य दिनों में वाचे तो कोई हरकत नहीं है। कल्पसूत्रार्थप्रबोधिनी के पीठिकाधिकार में लिखा है कि—

श्रावकोऽप्येकासनादितपो विधाता नियमतः सामायि काद्यनुष्ठाता कृतोपधानः सन् बालबोधभाषामयमेवैतत्कल्प सूत्रं वाचयितुमर्हति। असत्यखिलनियमसाधने केवलं सचि त्ताहारादिसावद्यकर्ममुक्तोऽप्येतच्छ्रावयितुं शक्नोति वा।

—एकासनादि तप और नियम से सामायिक आदि अनुष्ठान करनेवाला उपधानवाही श्रावक, अथवा उस प्रकार के क्रियानुष्ठान में असमर्थ श्रावक केवल सचित्त आहारादि सावद्य कर्म का त्याग करके भी बालबोधभाषामय कल्पसूत्र को वाच या वाच कर सुना सकता है।

यह नियम पर्युषण में कल्पसूत्र वाचने सुनाने सम्बन्धी समझना चाहिये। अन्य दिनों में तो स्वाध्याय रूप में अत्यागी श्रावक भी स्वयं कल्पसूत्र वाचे और दूसरों को वाच कर सुनावे तो कुछ भी दोषापत्ति नहीं है।

११३ प्रश्न—सामान्य साधु (पदवीरहित मुनि) आलोचना दे सकता है या नहीं?।

उत्तर—आचार्य, उपाध्याय, गणि, गणावच्छेदक और रत्नाधिक इन पाच पदस्थ गीतार्थों के सिवा सामान्य साधु को आलोचना देने का अधिकार नहीं है। इनमें भी आचार्य या उपाध्याय की विद्यमानता में दूसरे पदस्थ गीतार्थ भी आलोचना नहीं दे सकते। अत सामान्य साधु न आलोचना दे सकता है और न उसकी दी हुई आलोचना गिनती में आ सकती है।

११४ प्रश्न—जिसके प्रभुदर्शन करके भोजन करने का नियम हो वह जिनालय की अनुपस्थिति में दिगम्बरों के मन्दिर में दर्शन कर सकता है या नहीं?।

उत्तर—दर्शन पूर्वक ही भोजन करने के नियमवालों को जिनालय के अभाव में ईशानकोण तरफ विदेहक्षेत्र में विचरते हुए श्रीसीमन्धरप्रभु के दर्शन करके अपने नियम का पालन कर लेना चाहिये। जिसको दिशा का विवेक नहीं है वह अपने नियम की रक्षा के लिये दिगम्बरों के मंदिर में कभी प्रभु दर्शन कर लेवे तो कोई दोषापत्ति नहीं है, परन्तु देश काल का विवेक रखना अच्छा है।

११५ प्रश्न—सामान्य साधुओं को अब्भुट्ठिओ के पाठ से वन्दन करना या नहीं?।

उत्तर—आचार्यादि पाच पदस्थ-गीतार्थों को द्वादशावर्त्त-वन्दनविधि से वन्दन करना। उनमें भी पाचों पदस्थों की

विद्यमानता में आचार्य को द्वादशावर्त्त वन्दन से और शेष पदस्थों को खमासमण पूर्वक अब्भुट्ठिओ के पाठ से वन्दन करना ऐसी गच्छीय मर्यादा है। इसी प्रकार आचार्य आदि की आज्ञा मे जो साधु-सघाटक विचरता हो, उसमें मुख्य साधु को अब्भुट्ठिओ के पाठ से और बाकी के साधुओं को खमासमण और इच्छकार से वन्दन करना चाहिये। आज इस नियम से विरुद्ध प्रवृत्ति प्रचलित है जो अवाछनीय, हेय और विनय धम की नाशक है।

११६ प्रश्न—पाचालदेश की पाट नगरी 'अहिच्छत्रा' किस देश म कहाँ पर है ?।

उत्तर—युक्तप्रदेश के बरेली जिले में रामनगर के पास एक विशाल खडहर है। पाचालदेश की पाट नगरी अहिच्छत्रा का यही खडहर है। इसकी पतितावशिष्ट भूमिस्थ कोई कोई दीवार ५० फुट ऊँची और ईंटे २१ से २४ इच तक लम्बी हैं जो मसीहा की उत्पत्ति से ३०० साल पहेले बना करती थीं। अनुमान है कि हूणों की चढाई के समय यह नगरी नष्ट हुई हो। कल्पसूत्रार्थप्रबोधिनी में लिखा है कि—

त्रीणि दिनानि भगवन्मौलौ धरणेन्द्रस्थापितमहिच्छत्र-यदस्थादत सा नगरी सर्वत्र'अहिच्छत्रा' इति प्रख्यातिमगात्।
—तापसाश्रम के पास न्यग्रोधवृक्ष के नीचे पार्श्वनाथ प्रभु कायोत्सर्गध्यान में खड़े थे। कमठासुरने प्रभु को उपसर्ग करने के

लिये मूसलाधारवृष्टि आरम्भ की। भगवान आकण्ठ जल में डूब गये। नागराज धरणेन्द्र का सिंहासन कंपित हुआ। उन्होंने आकर प्रभु के ऊपर नागफणि का छत्र धारण किया। महावृष्टि तीन दिन तक जब बन्द नहीं हुई, तब अवधिज्ञान से कमठासुर का उपद्रव जान कर धरणेन्द्रने उसको डाटा। कमठासुरने भयभीत हो प्रभु का शरण लिया और अपराध की क्षमायाचना कर वह अपने स्थान को गया। धरणेन्द्रने प्रभु के ऊपर अहिछत्र रक्खा इससे वह स्थान 'अहिच्छत्रा नगरी' के नाम से सर्वत्र प्रसिद्ध हुआ।

कुछ इतिहासकारों का यह भी कहना है कि–जोधपुर-राज्य का उत्तर भाग प्राचीनकाल में जागलदेश कहाता था। बीकानेर के राजा जागलपति होने से अपने को जागलदेश–बादशाह घोषित करते हैं। जागलदेश की राजधानी अहिच्छत्रपुर थी–जिसका वर्त्तमान नाम 'नागोर' है। इस विभिन्नता का निर्णय इतिहासज्ञों पर ही निर्भर है।

११७ प्रश्न—पोरवाडों की उत्पत्ति पहले हुई या ओसवालों की और वह कहाँ हुई?।

उत्तर—प्रभु महावीर के समय श्रीमाल राजाने मारवाड़ गुजरात की सीमा पर अपने नाम से 'श्रीमालनगर' बसाया और उसको जन, धन एवं व्यवसाय से समृद्ध किया। पार्श्वनाथसन्तानीय स्वयम्प्रभाचार्यने वीरनिर्वाण से प्रथम शताब्दी के

पूर्वार्धे के कुछ पहले प्रतिबोध देकर श्रीमाल में श्रीमाली महा जनसंघ और प्राग्वाटवंश कायम किया। इसके बाद श्रीवी रनिर्वाण से ७० वें वर्ष रत्नप्रभाचार्यने ओसिया (उपसपट्टन) में ओसवालवंश की स्थापना की। इससे सिद्ध होता है कि पोरवाडों की उत्पत्ति पहले और ओसवालों की बाद में हुई। विक्रमाब्द ५०३ में सिंहराजा के समय ६२ श्रीमाल ब्राह्मण और ८ प्राग्वाट ब्राह्मण कुटुम्बों को उदयप्रभाचार्यने जैन बनाकर प्राग्वाटवंश में शामिल किये। दुष्काल के समय श्रीमाल से निकल कर जो पोरवाड गुजरात, सौराष्ट्र, मालव, मेवाड और विहार आदि में जाकर बसे वे जुदे जुदे नामों से प्रख्यात हुए।

११८ प्रश्न—सेवग जाति कब किस तरह हुई है?।

उत्तर—श्रीकृष्ण के पुत्र साम्बकुमारने शाकद्वीप से जिन ब्राह्मणों को लाकर भारत में बसाये वे शाकद्वीपीय ब्राह्मण नाम से प्रसिद्ध हुए। भारतवर्षीय चोरासी जाति के ब्राह्मणोंने शाकद्वीपवासियों को अपने में शामिल नहीं किये। ओसवालों की स्थापना के समय शाकद्वीपियों ने जैनाचार्यों की शरण ली। उन्होंने जैनों की सेवा के लिये इनको सेवग कायम किये। तभी से इन लोगों की जाति सेवक कही जाने लगी।

प्रश्नकार—ऊकचंद जैन, मु० मेगलवा (मारवाड़)

११९ प्रश्न—प्रभुप्रतिमा सब समान हैं, उनमें छोटे बड़े

का भाव नहीं है, फिर मूलनायक प्रतिमा को बड़ी मान कर उसकी सब से पहले पूजा क्यों करना चाहिये ?।

उत्तर—सभी जिनप्रतिमाएँ समान हैं उनमें सेव्य-सेवक भाव बिलकुल नहीं है। लेकिन व्यवहारदृष्टि से जिनालय में प्रवेश करते ही प्रथम मूलनायक पर ही दृष्टि पडती है और उससे हार्दिक भावना जागृत होती है। इसीसे मूलनायक की प्रतिमा मुख्य मानी गई है और उसकी पूजा भी पहले की जाती है। संघाचार-भाष्य में लिखा है कि—

उचियत्त पूआए, विसेसकरण तु मूलबिंबस्स।
ज पडइ तत्थ पढम, जणस्स दिट्ठी सहमणेण ॥ १ ॥

—उचित-विधि से सब जिनप्रतिमाएँ पूज्य हैं, परन्तु जिनमन्दिर में प्रविष्ट होते ही लोगों की दृष्टि पहले मूलनायक प्रतिमा पर पडती है। इसलिये सब प्रतिमाएँ समान होने पर भी मूलनायक की पूजा पहले करना उचित है।

१२० प्रश्न—प्रभुप्रतिमा की पूजा किस प्रकार के फूलों से करना चाहिये ?।

उत्तर—गुलाब, मोगरा, जाई, जुई, आदि उत्तम सुगन्धी पुष्पों से प्रभु की पूजा करना चाहिये। दुर्गन्धी, शुष्क, अपक्व और सडे हुए पुष्पों से नहीं। जिनहर्षसूरिकृत-विंशतिस्थानक विचारामृतसंग्रह में कहा है कि—

न शुष्कै' पूजयेद् देव, कुसुमैर्न महीगतै' ।
न विशीर्णदलं स्पृष्टैर्नाऽनिकाशिभि ॥ १ ॥

कीटकेनापविद्धानि, शीर्णपर्युषितानि च ।
वर्जयेदूर्णनामेन, वामित यदशोभनम् ॥ २ ॥

पूतिगन्धीन्यगन्धीनि, अम्लगन्धीनि वर्जयेत् ।
मलमूत्रादिनिर्माणादुत्सृष्टानि कृतानि च ॥ ३ ॥

—सूखे हुए, भूमि पर पड़े हुए, पक्षियों से टोंचे हुए, अशुचि से छुए हुए, बिना खिले हुए, कीड़ों से खाये हुए, छिले हुए, रातवासी, जालेवाले, दुर्गन्धी, सुगन्धरहित, खट्टे, मल मूत्रोत्सर्ग क समय पास में रहे हुए, एव बनावटी पुष्पों से प्रभु की पूजा नहीं करनी चाहिये ।

१२१ प्रश्न—तिरसठ शलाकापुरुषों के जीव, माता और पिता कितने-कितने हैं ? ।

उत्तर—त्रिपृष्ठवासुदेव तथा महावीरप्रभु का जीव एक, शान्तिनाथ, कुंथुनाथ तथा अरनाथ इन तीन चक्रवर्ती और इन्हीं तीर्थङ्करों का जीव एक-एक ही है । इसलिये ६३ में से चार कम करने पर ५९ जीव हुए । शान्तिनाथ, कुंथुनाथ और अरनाथ ये तीनों चक्रवर्ती भी है और तीर्थंकर भी हैं इसलिये ६३ में तीन कम मानने से ६० अथवा मता न्तर से देवानन्दा को भी माता हुई । वासुदेव-बलदेव के

अरनाथ इन तीनों तीर्थङ्कर और चक्रवर्त्ती के पिता एक-एक ही हैं। इसलिये ६३ में से १२ कम करने पर ५१ पिता, अथवा मतान्तर से ऋषभदत्त को भी पिता मान लेने से ५२ पिता हुए।

१२२ प्रश्न—पादच्छाया से पोरिसी का प्रमाण किस प्रकार समझना चाहिये ?।

उत्तर—उत्तराध्ययनसूत्र की 'आसाढे मासे दुपया' इस गाथा की व्याख्या के अनुसार पादच्छाया से पोरिसी का प्रमाण नीचे लिखे अनुसार है—

१ चैत्र में ३ पैर।	७ आश्विन में २ पैर।
२ वैशाख में २ पैर, ८ अंगुल।	८ कार्तिक में ३ पैर, ४ अंगुल।
३ ज्येष्ठ मे २ पैर, ४ अंगुल।	९ मगसिर में ३ पैर, ८ अंगुल।
४ आषाढ मे २ पैर।	१० पौष में ४ पैर।
५ श्रावण में २ पैर, ४ अंगुल।	११ माघ में ३ पैर, ८ अंगुल।
६ भाद्रव में २ पैर, ८ अंगुल।	१२ फाल्गुन में ३ पैर, ४ अंगुल।

जिधर शरीर की छाया पडे उधर बराबर खडे रह कर, हाथों को घुटने पर रख, और बाँया पैर कुछ आगे रख कर शरीर की छाया जहाँ पडे वहाँ तक दहिने पैर से मापना। प्रति-मास में जितने पैर या अंगुल छाया का माप हो उसीके अनुसार पोरिसी का प्रमाण समझना चाहिये।

१२३ प्रश्न—प्रभुप्रतिमा के पीछे भामण्डल क्यों रक्खा जाता है ?।

उत्तर—अनन्त सूर्यों के तेज से भी प्रभु का शरीर अधिक तेजस्वी है, उसको देखने से लोगों की आँखे मुद जाती हैं लोग प्रभु के दर्शन सुख पूर्वक नहीं कर सक्ते। इसलिये देवता प्रभु के पीछे शीतरत्नमय भामण्डल की रचना करते हैं श्रीवर्द्धमानदेशना में लिखा है कि—

रूव पिच्छताण, अइदुक्खह तस्स होउ मा विग्ध।
तो पिंडिऊण तेअ, कुणति भामडल पिट्ठे ॥ १ ॥

—प्रभु के तेजस्वी रूप को देखते हुए लोगों को किस तरह का कष्ट न हो, इसलिये उनके पीछे दिव्य भामडल की रचना की जाती है-जिससे सब कोई प्रभु के दर्शन भली भाँति कर सके। उसी भावना को लक्ष्य में रख कर आज भी प्रभुप्रतिमाजी के पीछे भामडल रक्खा जाता है।

१२४ प्रश्न—सम्यक्त्व किसको कहते है ?, और वह किसमें रहता है ?।

उत्तर—शुद्ध देव, गुरु और धर्म के अटूट आत्म-विश्वास को सम्यक्त्व कहते है और वह कुदेव, कुगुरु, कुधर्म के त्यागी स्त्री-पुरुषों में रहता है। उपदेशप्रासाद ग्रन्थ में कहा है कि—

देवो जिणिंदो गयरागदोसो, गुरुवि चारित्तरहस्स कोसो।
जीवाइतत्ताण य सद्दहाण, सम्मत्तमेय भणिय पहाण ॥१॥

जस्मारिहते मुणिमत्तमेसु, मोत्तु न नामेइ सिरो परस्म ।
निव्वाणसुक्खाणनिहाणठाण, तस्सेन सम्मचमिण निसुद्ध॥२॥

—राग-द्वेष रहित जिनेन्द्र देव, चारित्र रहस्य के निधान गुरु और जीवादि पदार्थों पर दृढ आत्मविश्वास रखने को सम्यक्त्व कहा गया है। जिस मनुष्य का मस्तक अर्हन्तदेव, और उत्तम साधु के सिवा अन्य देव, अन्य श्रमणों के लिये कभी नहीं नमता उसी पुरुष का मोक्षसुख का निधान और विशुद्ध सम्यक्त्व समझना चाहिये।

१२५ प्रश्न—अन्न में जहर मिला हो उसकी पहचान किस प्रकार है?।

उत्तर—इस विषय को जानने के लिये शास्त्रों में अनेक परीक्षा-नियम लिखे मिलते हैं। परन्तु सब से सरल उपाय यही लक्ष्य में रखना चाहिये कि—

दृष्ट्वान्न मविष चकोरविहगो धत्ते विराग दृशो—
हंसः कूजति सारिका च वमति क्रोशत्यजस्र शुकः ।
विष्टा मुञ्चति मर्कटः परभृत प्राप्नोति मृत्यु क्षणात्,
क्रोञ्चो माद्यति हर्षराश्च नकुलः प्रीतिं च धत्ते द्विकः ॥ १ ॥

—विष मिश्रित अन्न को देख कर चकोरपक्षी आँखों को बन्द कर लेता है। हस चिल्लाने लगता है। सारिका वमन करने लगती है। तोता रोष करने लगता है। बन्दर विष्टा करने लगता है। कोकिलपक्षी मर जाता है। क्रौंचपक्षी पागल

बन जाता है । नकुल प्रसन्न होता है और कौआ आनन्द मनाता है । किसी शत्रु के घर भोजन करना या लेना पड़े तो पक्षियों और पशुओं के उक्त चिह्नों को ध्यान में रखना लाभ जनक एवं स्वास्थ्य दायक है ।

१२६ प्रश्न—अपंडित कौन कहाता है ? ।

उत्तर—जो अपना जीवन केवल ऐश आराम में बिताते हैं, एक दूसरे को नीचा दिखाने का प्रयत्न करता है, अपनी प्रशंसा और दूसरों की निन्दा करता है, अपने स्वार्थ के लिये शास्त्र-वाक्यों के अर्थ विपरीत करता है, और शिष्ट-पुरुषों की अवज्ञा करता है, उसको अपंडित कहना चाहिये । नीतिकारोंने कहा भी है कि—

बहत्तरी कला पंडिया वि, पुरिसा अपंडिया चेव ।
सव्वकलाण वि पवर, जे धम्मकला न याणंति ॥ १ ॥

—बहत्तर कला सीख लेने पर भी जिसने एक धर्मकला नहीं सीखी वह अपंडित है । अर्थात्–धर्मकला को भली-भाँति सीख लेने से और अपने आचरणों को शिष्ट बना लेने से मनुष्य पंडित कहाता है, अन्यथा नहीं ।

१२७ प्रश्न—अनाथ किसको कहना ? ।

उत्तर—जो लोग परोपकारशून्य, धनलुब्ध, पापासक्त, भोगाकांक्षी, विघ्नसन्तोषी, अनर्थोपदेशक, अवर्णवादी, अतिक्रोधी, हठी, कदाग्रही, भोजनानन्दी और नीतिभ्रष्ट हैं उनको

अनाथ समझना चाहिये। इसी प्रकार सयमधर्म से पतित, और सूत्र-विरुद्ध भाषण करनेवाले लोग भी अनाथ हैं। ग्रन्थकारोंने कहा भी है कि—

प्रव्रज्य ये पञ्चमहाव्रतानि, न पालयन्ति प्रचुरप्रमादात्।
रसेषु गृद्धा अजितेन्द्रियाश्च, जिनैरनाथाः कथितास्त एव ॥१॥

—जो पच महाव्रतों को ग्रहण करके अति प्रमाद से उनका यथावत पालन नहीं करते, रसों मे गृद्ध रहते हैं और इन्द्रियों का दमन नहीं करते वे जिनेश्वरों के द्वारा अनाथ कहे गये हैं।

१२८ प्रश्न—अभव्य कितने और कर हुए ?।

उत्तर—सगमदेव १, कालसौकरिक कसाई २, कपिला-दासी ३, उदायीनृपमारक-विनयरत्नसाधु ४, स्कन्धकशिष्य-पीलक-पालक मत्री ५, अगारमर्दकाचार्य ६, कृष्णपुत्र-पालक ७ और गोष्ठा माहिल ८, ये आठ अभव्य हुए हैं। इनकी दर्शक गाथा भी है कि—

सगमय कालसोगरिय, कविला अगार पालया दोवि।
णोजीवगुट्ठमाहिल, उदाइनिवमारओ अभवा ॥ १ ॥

इनमें पहले चार वीरप्रभु के शासन में, वाद के तीन नेमिनाथ भगवान के शासन में, आठवा पचमारक मे हुए जानना चाहिये। विना किसीका उपदेश सुने स्वाभाविकतया

जिसके हृदय में ऐसा विचार पैदा हो कि–मैं भव्य हूँ या अभव्य, अथवा धर्म के ऊपर जिसका अटूट अनुराग हो वही भव्य है और वैसा विचार या अटूट अनुराग न हो वही अभव्य है ऐसी गीतार्थों की मान्यता है।

१२९ प्रश्न—जीव शरीर के किस–किस भाग से निकल कर किस–किस गति में जाता है ?

उत्तर—पैरों से निकला जीव नरक मे, जघा से निकल तिर्यञ्च म, छाती से निकला मनुष्य में, शिर से निकला देव में और सर्वाङ्ग से निकला मोक्ष में जाता है। इसका समर्थक प्रमाण यह है कि—पचविह जीवनिज्ञाणमग्गे पन्नत्ते, तजहा पाएहिं ऊरुहिं उरेण सिरेण सव्वगेहिं। पाएहिं निज्ञायमाणे निरयगामी भवइ। ऊरुहिं निज्ञायमाणे तिरियगामी भवइ। उरेण निज्ञायमाणे मणुयगामी भवइ। सिरेण निज्ञायमाणे देवगामी भवइ। सव्वगेहिं निज्ञायमाणे सिद्धिगइ पज्जवसाणेत्ति। स्थानाङ्गसूत्र, ५ स्थानक, ४६१ सूत्र।

१३० प्रश्न—विद्याधर और आहारकलब्धिसपन्न मुनि तिरछे लोक में कहाँ तक जाते आते हैं ?।

उत्तर—आहारकशरीरी मुनि महाविदेह तक, विद्याचारण–मुनि तथा विद्याधर नन्दीश्वरद्वीप तक और जघाचारणमुनि स्वलब्धि–बल से रुचकद्वीप तक आते जाते हैं, ऐसा सग्रहणी–सूत्र की वृत्ति में लिखा है।

१३१ प्रश्न—अष्टापद की सीढियाँ किसने बनाईं ?।

उत्तर—भरतचक्रवर्त्तीने अष्टापद–पर्वत के ऊपर जिनालय बनवा कर उसमें स्व-स्व अवगाहनावाली जिनेश्वरों की चौवीस प्रतिमाएँ विराजमान कीं और नीचे से ऊपर तक एक–एक योजन प्रमाण की आठ सीढियाँ बनाईं। इसीसे यह पर्वत अष्टापदगिरि के नाम से प्रसिद्ध हुआ ऐसा भरतचक्री के चरित्र से मालूम होता है। उत्तराध्ययनसूत्रवृत्ति मे लिखा है कि–अजितनाथ भगवान के शासनकाल मे सगरचक्रवर्त्ती के पुत्र जह्नुकुमारने दण्ड रत्न से अष्टापद की आठ सीढियाँ बनाईं। मालूम होता है कि भरतकारित सीढियाँ जीर्ण या खडित हुईं होगी, अत जन्हुकुमारने उनका फिर से उद्धार कराया होगा।

१३२ प्रश्न—महापापी किसको कहना ?।

उत्तर—आत्मघाती, विश्वासघाती, शास्त्रमर्यादा का उच्छेदक, देवगुरुधर्म का निन्दक, दूसरों को कुमार्ग मे डालने और हिंसा मे धर्म माननेवाला महापापी है। ऐसे लोगों का ससार भ्रमण नहीं मिटता और ये स्वपर को डुबानेवाले होते हैं।

प्रश्नकार—मुनिश्रीवल्लभविजयजी, मु० जावरा।

१३३ प्रश्न—घर–मन्दिर मे कितनी बड़ी प्रतिमा बैठाना और वह दागवाली हो तो ठीक है या नहीं ?।

उत्तर—गृहजिनालय मे एक, तीन, पाच, सात, नव और ग्यारह अगुल बड़ी प्रतिमा बैठाना शुभकर है। उनका

फल क्रमशः श्रेष्ठ, सिद्धि, धनयशवृद्धि, पशुवृद्धि, पुत्रप्रपौत्रवृद्धि और इच्छित–सिद्धि करनेवाली समझना चाहिये । घर–मन्दिर में दो, चार, छ, आठ, और दश अगुल बड़ी प्रतिमा कभी नहीं बैठाना चाहिये । क्यों कि ऐसी प्रतिमाएँ धननाश, दुःख, उद्वेग, हानि और विभवनाश करनेवाली होती हैं ऐसा आचार दिनकर के वृत्तिकारने लिखा है। ग्यारह अगुल से अधिक बड़ी प्रतिमा शिखर बद्ध या गुम्बजदार मन्दिर में ही बैठाना अच्छा है।

जिस वर्ण की प्रतिमा हो उससे भिन्न वर्ण के दाग उस पर हों तो अशुभ है। प्रतिमा पर नन्दावर्त्त, शेषनाग, अश्व, श्रीवत्स कच्छप, शख, गज, स्वस्तिक, गौ, इन्द्र, चन्द्र, सूर्य, छत्र, माला, ध्वजा, तोरण, मन्दिर, कमल, वज्र, वृषभ, हरिण और गरुड़ के समान वर्ण की रेखा या तदाकृति के दाग हों तो शुभदायक हैं ऐसा कुमारमुनिरचित– शिल्परत्न में कहा है। वसुनन्दी–प्रतिष्ठासार में लिखा है कि–प्रतिमा के हृदय, मस्तक, ललाट, स्कन्ध, कान और मुख, एव पेट, हाथ तथा पैरों पर स्ववर्ण से भिन्नवर्णवाले दाग या रेखा हों तो वह प्रतिमा अशुभ है। इसलिये जिनप्रतिमा दाग रहित, या स्ववर्ण के दागवाली निर्दोष समझना चाहिये ।

१३४ प्रश्न—जिनमन्दिर पर ध्वजादण्ड कितना लम्बा, कितना जाड़ा और उसकी पाटली कितनी लम्बी, जाड़ी रखना चाहिये ? ।

उत्तर—जिनालय की खुरशिला से कलश की ऊँचाई के तीन भाग करना, उसमे से तीसरे भाग जितना दण्ड लम्बा बनाना यह ज्येष्ठ मान है। इसमें आठवा भाग कम करने से मध्यम और मध्यममान मे से चौथा भाग कम किया जाय तो कनिष्ट मान का दण्ड समझना चाहिये। प्रकारान्तर से प्रासाद के विस्तार जितना लम्बा ज्येष्ठमान, उसमें दशवा भाग कम करने से मध्यममान और उसमें से भी पाचवा भाग कम करने से कनिष्टमान का दड होता है।

एक हाथ विस्तारवाले जिनालय का दण्ड पौन अगुल जाडा बनाना, बाद मे हरएक हाथ पर आधे आधे अगुल की जाडाई में वृद्धि करना। अर्थात्–दो हाथ विस्तारवाले मन्दिर का दण्ड सवा अगुल, तीन हाथ विस्तारवाले का पौने दो अगुल, चार हाथवाले का सवा दो अगुल और पाच हाथवाले का पौने तीन अगुल का जाड़ा दड समझना। इसीक्रम से पचास हाथ के विस्तारवाले प्रासाद के लिये सवा पचीस अगुल जाड़ा दण्ड बनाना चाहिये, ऐसा वस्तुसारप्रकरण, प्रासादमडन, आदि शिल्पग्रन्थों का मन्तव्य है।

दण्ड की लम्बाई के छट्ठे भाग जितनी लम्बी पाटली बनाना। लम्बाई से आधी चौड़ी और चौड़ाई से तीसरे भाग की जाडाई पाटली की रखना चाहिये। पाटली के मुख मे दो अर्ध चन्द्राकार बना कर उसके दोनों तरफ घटियाँ और मध्य

भाग में कलश बनाना चाहिये । पाटली का अर्धचन्द्राकार मुख माना जाता है । इसलिये जिनालय का मुख्य द्वार जिस दिशा मे हो उसी तरफ पाटली का मुख रखना लाभकारक है। दड की लम्बाई के बराबर लम्बी और दड के आठवें भाग जितनी चौडी धजा और उसके अन्तिम भाग मे तीन या पाच शिखा बनाना चाहिये । जिनालय के ऊपर दण्ड और ध्वजा न होने से उसमें असुरों का निवास हो जाता है । अत जिनालय को दण्डध्वजा से खाली कभी नहीं रखना चाहिये ।

१३५ प्रश्न—उपवास से क्या लाभ है ?, और उसका अथ क्या होता है ? ।

उत्तर—उपवास करने से शरीर हलका रहता है और क्षुधा बढ़ती है । ज्वर, मुखरोग और जठराग्नि को मन्द करने वाले दोषों का नाश होता है । हिन्दु, बौद्ध आदि धर्मों मे उपवास को शरीरशुद्धि और चित्तशुद्धि का कारण माना है। अत यह स्वास्थ्य और धार्मिकदृष्टि से नि सन्देह लाभकारक है। जिस उपवास में फलाहार, दुग्धपान और हृदय की मलिन भावनाओं को स्थान न दिया जाता हो वही उपवास निर्दोष और श्रेष्ठ उपवास है। श्रेष्ठ उपवास से चित्तशुद्धि होकर, उसके ज्ञान-दर्शनादि गुणों का भली-भाँति विकास होता है । उस विकास से परमानन्द की प्राप्ति होती है । उपवास शब्द का अर्थ यह है कि—

उपावृत्तस्य पापेभ्यो, यश्च वासो गुणैः सह ।
उपवासः स विज्ञेयः, सर्वभोगविवर्जितः ॥ १ ॥

—पापाचरणों से रहित पुरुष का जो गुणों के साथ निवास (गुणानुशीलन) होना और सर्व भोगों का अभाव होना उसको ' उपवास ' समझना चाहिये । अर्थात्–जिससे मन की अनुकूलता, इन्द्रियों का दमन, गुणानुशीलता, अन्तरङ्ग शत्रुओं का विजय और विषयलालसाओं की न्यूनता हो उसीको उपवास कहा गया है ।

जैनशास्त्रों की आज्ञानुसार जिसमें त्रिदण्डोत्कालित गर्म जल पीने की छुट्टी रख कर शेष अशन, खादिम और स्वादिम इन तीन आहारों का त्याग किया जाय उसको त्रिविधाहार–परिहार रूप उपवास और जिसमें चारों आहार का त्याग किया जाय उसको चतुर्विधाहार–परिहार रूप उपवास कहा गया है। त्रिविधाहार त्यागरूप उपवास में दिवस में दो या चार मर्त्तबा गर्म जलपान किया जाता है, रात्रि में उसका भी त्याग रहता है ।

१३७ प्रश्न—अपुनर्बन्धक किसको कहते हैं ? ।

उत्तर—तीव्रभावों से पाप नहीं करनेवाला, भव–भ्रमण को दुःखद माननेवाला, और समस्त उचित मर्यादा का भली-भाँति पालन करनेवाला प्राणी अपुनर्बन्धक कहलाता है । जो मनुष्य अपनी प्रवृत्ति से नये पापकर्मों का बन्धन नहीं करता

और बद्ध पापकर्मों का नाश करता है, शास्त्रपरिभाषा से वह अपुनर्बन्धक कहा जाता है। अपुनर्बन्धक–मनुष्य को दुष्टलोगों की सगति का त्याग, सदाचारियों का अनुकरण, शिष्टमर्यादा का पालन, साधुजन की सेवा, दानादि धर्म में प्रवृत्ति, स मार्ग की प्ररूपणा, विधि से धर्मशास्त्रों का श्रवण, अनित्यादि अनुप्रेक्षाओं का चिन्तन, विधिमार्ग का आचरण, धैर्य का अवलम्बन, परमेष्ठिमत्र का जाप, दुष्कृत की निन्दा, सुकृत की अनुमोदना, भविष्यत्काल की चिन्ता, आगमोक्त वचनों पर आत्मविश्वास और चार शरणों का प्रतिपल धारण, आदि विशुद्ध प्रवृत्ति में वर्त्तना चाहिये–जिससे आत्मा कर्मलेप से कभी लेपित न हो।

१३७ प्रश्न—सूर्योदय से पहले दश प्रतिलेखना कौन कौनसी की जाती है?।

उत्तर—मुखवस्त्रिका १, रजोहरण २, निपद्याद्वय ४, चोलपट्ट ५, वस्त्रत्रिक (दो चादर एक कम्बल) ८, सस्तारक ९ और उत्तरपट्ट (आस्तरणवस्त्र) १०, इन दशों की प्रतिलेखना सूर्योदय से पहले करना चाहिये, ऐसा धर्मसग्रहग्रन्थ के तृतीय अधिकार में कहा है। इसीका दर्शक निशीथचूर्णि का भी प्रमाण–पाठ यह है कि—

मुहपत्तीरयहरण, दुन्निनिसिज्जा य चोल कप्पतिग।
सथारुत्तरपट्टो, दस पेहाणुग्गए सूरे ॥ १ ॥

१३८ प्रश्न—मैथुन किसको कहते हैं और उससे क्या नुकशान होता है ? ।

उत्तर—मनुष्य-स्त्री, देवी और पशुस्त्री के साथ रति-क्रीड़ा करना मैथुन कहाता है। अथवा स्त्री पुरुष दोनों के पारस्परिक कामाभिलाषा होना मैथुन कहाता है। वह दो प्रकार का है–नैसर्गिक और अनैसर्गिक। भोग योग्य वय होने पर भोग्य वयवाली स्त्री से कामकेलि करना नैसर्गिक-मैथुन है। इसमे अति मैथुन, वेश्या, विधवा, परस्त्री, कुमारिका और पशु-स्त्री के साथ रति करना गर्हणीय, नीतिविरुद्ध और शरीर-सपत्ति की घातक है। इसलिये मुख्यतया पुरुष स्त्रियों को असड ब्रह्मचारी वनना या स्त्रियों को पतिव्रता और पुरुषों को स्वदारासतोषी वनना चाहिये, तभी उनकी शिष्टमर्यादा रह सकती है। वालविवाह, वृद्धविवाह, अजोड़विवाह, आदि सम्बन्ध सुशीलता और शिष्टधर्म के नाशक हैं।

हस्तकर्म, गुदामैथुन, लिङ्गस्पर्श और कामाङ्ग के सिवा अन्य शरीरावयवों से कामचेष्टा करना अनैसर्गिक मैथुन है। यह नीति और धर्म दोनों से विरुद्ध तो है ही, पर शारीरिक स्वास्थ्य को भी नुकशान पहुचानेवाला है। प्रमेह, उपदश, मूत्रकृच्छ, नपुसकता, क्षय, भ्रमरी, अरुचि और अशक्ति, आदि रोगों का उत्पादक यही मैथुन है। स्त्रियों के प्रदर और क्षयरोग ऐसे ही पुरुषों के साथ सगम करने से होते हैं। इसलिये क्या

स्त्री, क्या पुरुष दोनों को कुचेष्टा की आदत से सदा बच कर रहना चाहिये। विशेष कर साधु और साध्वियों को तो दोनों प्रकार के मैथुन से सर्वथा अलग रह कर अखण्ड ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिये, तभी उनका साधुत्व ठहर सकेगा, अन्यथा नहीं। हारिभद्राष्टक में कहा है कि—

मूल चैतदधर्मस्य, भवभावप्रवर्द्धनम्।
तस्माद्विषान्नवत्त्याज्य-मिद मृत्युमनिच्छता ॥ ८ ॥

—मैथुन हिंसा, असत्य, स्तेय, व्यभिचार, लालच, निष्ठुरता, आदि अधर्म-पाप का और ससारभ्रमण का बढ़ानेवाला है। इसलिये मृत्यु के अनभिलाषी मुमूर्षु लोगों को मैथुन सर्वथा त्याग देने योग्य है। जिसने मैथुन को अपनाया उसने अपने कुल में दाग लगाया, शरीर-सपत्ति को बरबाद की, अपयश का नगारा बजाया, विपत्तियों को आमत्रण दिया, वैभव का नाश किया, गुणाराम में दावानल लगाया, सयमधर्म को जलाञ्जलि दी और मोक्ष के द्वार को बन्द किया। अतएव सभ्यता, शिष्टता और उत्क्रान्तदशा को प्राप्त करने के लिये अपने हृदय में विषयभोगाशा को बिलकुल स्थान नहीं देना चाहिये।

१३९ प्रश्न—क्षुधा से मनुष्य को क्या हानि होती है?

उत्तर—जो वीरवीर पुरुष क्षुधा-परिषह को शान्ति पूर्वक भली-भाँति जीत लेते है व समस्त कर्मों की निर्जरा कर अजरामर-पद भोक्ता बनते हैं। जो बालजीव इसको सहन नहीं

कर सकते, वे बुभुक्षावस्था में अधर्म और कुत्सित मार्ग का आश्रय लेते हैं, जाति और कुल की उत्तमता से गिर कर अस्पृश्य की भी गुलामी करते हैं। ससार में ऐसा कौन पाप है जिसको क्षुधा पीडित मनुष्य न करता हो। कहावत भी है कि 'बुभुक्षित किं न करोति पाप' उदरपूर्त्ति के बिना यात्रा, सेवा, शास्त्रश्रवण, सगीत, विनोद, आदि सभी बातें असुहावनी लगती हैं। धर्मसग्रहटीकाकारने लिखा है कि—

रूप सिरि सोहग्ग, नाण माण परक्कम सत्त।
लज्जा इदियविसओ, नवरि एगा य छुहा हणइ ॥ १ ॥

—ससार मे एक क्षुधा ही रूप, शोभा, सौभाग्य, ज्ञान, सन्मान, बल, सत्व, लज्जा और इन्द्रिय-विषय, इन नौ बातों का नाश करती है। इसलिये क्षुधा को सर्व-विनाशक भी कहा जाय तो अनुचित नहीं है। कहावत भी है कि 'सेर आटे बिन सर्व बात है खोटी।'

१४० प्रश्न—ससार मे लघुता का कारण क्या है ?।

उत्तर—'अति सर्वत्र वर्जयेत्' इस सिद्धान्त का अनादर करके जो लोग शक्ति के उपरान्त मनमाना काम करते हैं और समझाने पर भी अपने हठाग्रह को नहीं छोड़ते वे ससार मे लघुता पाते हैं। अति-बोलना, अति-हँसना, अति-खाना-पीना, अति-सोना, अति-परिश्रम करना, अति-भोग

करना, अति-दान देना, अति-कृपण होना और अति-लज्जा रखना, आदि सभी कार्य लघुता कारक जानना चाहिये।

अति-शीत से वृक्षों का नाश, अत्याहार से अजीर्ण, अति-कर्पूर भक्षण से दंतपात और अति वर्षा से दुर्भिक्षादि होता है। अति-दान से बलीराजा बाधा गया, अति-गर्व से रावणराजा मारा गया और अति-रूप से सती-सीता का हरण हुआ। इसलिये अत्यासक्ति सर्वथा अपमानास्पद है। शास्त्र में कहा भी है कि—

> अइरोसो अइतोसो, अइहासो दुज्जणेहिं संवासो।
> अइउब्भडो य वेसो, गुरुआपि लहुअ गुणेपव ॥ १ ॥

अधिक रोष करना, अधिक सन्तोष रखना, अविहास्य करना, अति दुर्जनों का समागम करना और अति-साफसूफ (पवित्र) रहना, ये पांचों बड़े होने पर भी छोटे हैं।

१४१ प्रश्न—श्रावक को भोजन में कैसा आहार लेना ?।

उत्तर—आवश्यकचूर्णि, श्राद्धविधि, श्रावकविधिप्रकरण, आदि ग्रन्थों में श्रावकों के लिये उत्सर्ग से निर्दोष, अचित्त और प्रासुक आहार करने की आज्ञा है। कहा है कि—

असणे अणंतकाय अल्लगमूलगाइ, पाणे मंसरसमज्जाइ, खादिमे उदुंबरउंबरवडपिप्पलपिलखुमाइ, सादिमे मधुमक्खियाइ परिहरिय अचित्तमाहारेयव्व। जदा किर ण होज्ज

अचित्तो तो उसग्गेण भत्त पच्चक्खाइ । ण तरइ ताहे अववाएण सचित्तमणतकाय बहुबीयगनज्ज ।

—अशन मे आलू मूला आदि अनन्तकाय, पानक मे मास-मदिरादि, खादिम मे उदुम्बर, काकोदुम्बर, बड, पीपल, पिल्छु आदि और स्वादिम मे मधु, माक्षिक आदि वस्तुओं को त्याग कर अचित्त आहार करना चाहिये । अगर ऐसे अचित्ताहार का योग न हो तो उत्सर्ग से आहार का त्याग करना चाहिये । यदि आहार छोड़ने की शक्ति न हो तो अपवाद से अनन्तकाय और बहुबीज वस्तुओं को छोड़ कर सचित्त आहार करना चाहिये । इससे यह सिद्ध हुआ कि श्रावक को आहार त्याग की अशक्तावस्था मे भोजन मे अनन्तकाय, अभक्ष्य, और महाविगय बिल्कुल नहीं वापरना चाहिये ।

श्रीबृहत्कल्पभाष्य के प्रथम खड मे कहा है कि—

पालक्कलट्टुमागा, मुग्गकय चामगोरसुम्मीस ।
समज्जइ अ अचिरा, त पिय नियमा दुदोमा य ॥

—पालखे की भाजी का शाग, कुसुभे की भाजी का शाग और मूगादि-द्विदल बीज कच्चे दूध दही छास के साथ मिलने से सूक्ष्म जीव पैदा होते हैं । इनके खाने से सयम और आत्मा का घात होता है । श्राद्धविधि के चतुर्थ प्रकाश की टीका मे भी लिखा है कि—

पर्युषितद्विदलपूपिकापर्पटवटिकादिशुष्कशाकतन्दुलीय-कादिपत्रशाकदुप्परकखारकखर्जुरद्राक्षाखण्डशुण्ठ्यादीनि फु छिकुन्थ्वलिकादिससक्तिसम्भवात्त्याग औषधादिविशेषकार्ये तु सम्यक् शोधनादियतनेन तेषा ग्रहणमिति ।

—वासी–द्विदल, पूड़ी, पापड़, वड़ी आदि, सूकी शाग, तादला की भाजी, पत्रशाक, कोपरावाटकी, खारक, खजूर, दाख, खाड, और सूठ आदि वर्षाकाल मे नीलफूल, कुथु ईलिकादि जन्तुओं की उत्पत्ति होने की सभावना से त्याज्य हैं। औषधादि कारण विशेष में शुद्ध करके यतना से काम में लेना चाहिये। इसी तरह मूला के पाचों अग अभक्ष्य होने से त्याज्य हैं।

प्रश्नकार—ताराचद मेघराजजी मु० पावा (मारवाड़)

१४२ प्रश्न—देवद्रव्य किसको कहना ?, उसकी वृद्धि कैसे करना ?, और उसके भक्षण से क्या हानि होती है ?।

उत्तर—जिनालय या प्रभुप्रतिमा के लिये जो धन, धान्य, मकान, हाट, खेत, गाँव आदि अर्पण किया जाता है वह देव द्रव्य माना जाता है। द्रव्यसप्ततिका मे लिखा है कि—

ओहारणवुद्धीए, दवाईण पकप्पिय च जया ।
ज धणधन्नप्पमुह, त तद्दव इह णेय ॥ २ ॥

—जिस धन–धान्य प्रमुख वस्तु को जब निश्चयबुद्धि से

देवादि के लिये अर्पण कर दी जाती है तब वह ससार में देवादि द्रव्य माना जाता है। आदि शब्द से साधारण, ज्ञान और गुरुद्रव्य के विषय मे भी यही बात समझना चाहिये। देवद्रव्य की वृद्धि करने के विषय में ग्रन्थकारों का कहना है कि—

१ वृद्धिरत्र अपूर्वापूर्वद्रव्यप्रक्षेपादिनाऽवसेया। सा च पञ्चदशकर्मादानकुव्यापारवर्जन–सद्व्यवहारादिना एव कार्या। अविधिना तु तद्विधान प्रत्युत दोषाय सपद्यते। (आत्मप्रबोध, १ प्रकाशे।)

२ जिनधनस्य–देवद्रव्यस्य वृद्धिर्मालोद्घट्टनेन्द्रमालादिपरिधानपरिधापनिकाधौतिकादिमोचनद्रव्योत्सर्पणपूर्वकाऽऽरात्रिकविधानादिना। (श्राद्धविधि, ५ प्रकाशे।)

३ श्रावकेण देवस्ववृद्धये कल्पपाल–मत्स्यबन्धक–वेश्याचर्मकारादीना कलान्तरादिदानम्, तथा देववित्तेन वा भाटकादिहेतुकदेवद्रव्यवृद्धये यद् देवनिमित्त स्थावरादिनिष्पादनम्। तथा महार्घाऽनेहसि विक्रयेण बहुदेवद्रविणोत्पादनाय गृहिणा यद् देवधनेन समर्घधान्यसग्रहणम्, तथा देवहेतवे कूपवाटिकाक्षेत्रादि विधानम्, तथा शुल्कशालादिषु भाण्डमुद्दिश्य राजग्राह्यभागाधिकारोत्पादनादुत्पन्नेन द्रव्येण जिनद्रविणवृद्धिनयन जिनवराऽऽज्ञारहितम्। (सबोधसप्तति काटीका, गाथा ६६)

(१) देव (जिनालय) के भडार में उत्तम-उत्तम वस्तु चढाने आदि से, कर्मादान ओर निंद्य व्यापार छोड़ कर अच्छ व्यवसायों से द्रव्यवृद्धि करना चाहिये । अविधि (निंद्य व्यव हार) से की हुई देवद्रव्य की वृद्धि उलटी दोष के लिये होती है । (२) माला ग्रहण करने, इन्द्रमाल पहनने, पहरामणी वस्त्र देन, पूजा योग्य धोती आदि चढाने और यथाशक्ति द्रव्य डाल (रख) कर आरती उतारने आदि से श्रावक को प्रति-वर्ष देवद्रव्य का वधारा करना चाहिये । इतिहासों से पता लगता है कि जिनालय आर जिनप्रतिमाओं के निर्वाह के लिये राणाकुम्भकर्ण के शासनकाल मे देल्वाड़ा मे चिन्तामणि-पार्श्वनाथ की पूजा होती रहने के निमित्त १४ टक का लागा लगाया था । सिद्धाचलजी के निर्वाह के लिये सिद्धराजने १२ गाँव अर्पण किये थे । हस्तिकुडी के विदग्धराजने वसुदेवाचार्य के उपदेश से जिनालय के निमित्त कई लागे लगाये थे और उसके पुत्र मम्मटने उन लागाओं को फिर से मजबूत कर दिये थे । इस प्रकार प्राचीन काल म राजा, महाराणी, अमात्य, सेठ, सेनापति आदि के तरफ से गाँव खेत, जमीन और आय-भाग देव के लिये अर्पण किये हुए थे । आज भी सघ के तरफ से प्रतिमाओं म लागा लगे हुए हैं । कई सद्गृहस्थों की दूकानों में देव, साधारण, और शुभखाते के आय पर लागा लगाये हुए हैं-जिनसे जिनालयों का भली-भाँति निर्वाह होता है। देवद्रव्य की वृद्धि के यही उपाय उत्तम हैं ।

(३) कलाल, धीवर, वेश्या, चमार, कसाई, पारवी, महत्तर प्रभृति को उनके बहुमूल्य आभूषणादि गिरवे रख कर देव की रकम व्याज पर देना १, अधिक भाड़ा उपजाने के अर्थ देवद्रव्य से मकान, हाट, खेत, जमीन, बावडी, कुआ, बाग आदि बनवाना २, महगाई मे अधिक मूल्य से बेचने के लिये देव की रकम से सस्ते भाव के घास धान्यादि चीजे सग्रह करके रखना ३ और सायर मे लिये जानेवाले दान (कर) मे वृद्धि कराके उसमे से देव का हिस्सा लेना ४। इस प्रकार से देवद्रव्य की वृद्धि करना, कराना शास्त्रोक्त मार्ग नहीं है। इन मार्गों से प्राय देवद्रव्य का विनाश ही होना सभव है। देवद्रव्य के विनाश के विषय मे वसुदेवहिंडीग्रन्थ के प्रथम खंड मे लिखा है कि—

जेण चेइयदव्व विणासिय तेण जिणबिंवपूआ दसणाणदियहिययाण भवसिद्धियाण सम्मदसण–सुअ–ओहि–मणपज्जव–केवलनाण–निव्वाणलाभा पडिसिद्धा। जा य तप्पभवा सुरमाणुस्सरिद्धिजायमहिमागमस्स साहुजणाओ धम्मोवएसो वि तस्सणुसज्जणा य मावि पडिसिद्धा। तओ दीहकालठिअं दसणमोहणिज्ज कम्म णिबधइ असायवेयणिज्ज च।

—जिसने चैत्यद्रव्य का नाश किया उसने जिनबिम्बपूजा और दर्शन से आनन्दित हृदयवाले भवसिद्धिक जीवों को मिलनेवाले सम्यग्दर्शन, श्रुत, अवधिज्ञान, मन पर्यवज्ञान, केवलज्ञान और निर्वाण (मोक्ष) लाभ को रोक दिया। जिन-

भक्ति से प्राप्त देव–मनुष्य सम्बन्धी ऋद्धि, आगम की महिम और साधुजनों से मिलनेवाले उपदेश लाभ का गौणरूप निषेध किया। इससे वह दीर्घकाल स्थितिक दर्शनमोहनी और अशातावेदनीय कर्म को बांधता है। आत्मप्रबोधग्र कारने भी कहा है कि—

जिणवर आणारहिअ, वद्धारता वि केवि जिणदव्व।
बुड्डंति भवसमुद्दे, मूढा मोहेण अन्नाणी ॥ १ ॥

—जिनेश्वरों की आज्ञा से विरुद्ध जो लोग देवद्रव्य की वृद्धि करते हैं वे मूर्ख अज्ञान से ससार–समुद्र में गोता खाते फिरते हैं।

आज देवद्रव्य की रकम से मीलों के शेर, बेंकों के चेक खरीद जाते हैं। गोदाम, बिलडिंग, मारकीट आदि गिरवे रख या बनवा कर उनसे भाडा उत्पन्न कर देवद्रव्य का वधारा किया जाता है। इसमें जिनाज्ञा का पालन बिल्कुल नहीं है, प्रत्युत इसमें जिनद्रव्य का समूल नाश होना सभव है। इसलिये देवद्रव्य की वृद्धि शास्त्रानुसार अच्छे सद्व्यवहार से नीति पूर्वक होनी चाहिये। उत्तम प्रकार से की हुइ देवद्रव्य की वृद्धि का फल अच्छा मिलता है। सम्बोधसप्ततिका में कहा है कि—

जिणपवयणवुड्ढिकरं, पभावगं नाणदंसणगुणाणं।
वड्ढंतो जिणदव्वं, तित्थयरत्तं लहइ जीवो ॥ ६६ ॥

—जिनद्रव्य की वृद्धि करता हुआ जीव उस तीर्थंकरपद

को प्राप्त करता है जिसके द्वारा विश्व में जिनशासन, ज्ञान और दर्शन गुणों की भारी समुन्नति होती है। श्राद्धविधि, द्रव्यसप्ततिका, धर्मसंग्रह, सम्बोधप्रकरण, दर्शनशुद्धि, आत्मप्रबोध आदि ग्रन्थों में इसी आशय का उल्लेख किया गया है।

असहाय श्रावक-श्राविका को सहायता देना, उनको यात्रा कराना, अनुकम्पादान देना, हिंसकों से बकरा भैंसा आदि छुड़वाना, कबूतरों को धान्य डालना, पशुओं को घास डालना, उपाश्रय या धर्मशाला बनवाना और अन्य कार्यों में देवद्रव्य की रकम लगाना-खर्च करना जिनद्रव्य का विनाश करना है। जिनद्रव्य जिनालय और प्रभुप्रतिमा के निर्वाह कार्य के सिवा अन्य किसी कार्य में नहीं लग सकता। दर्शनशुद्धि ग्रन्थ में साफ लिखा है कि—

आयाणं जो भंजइ, पडिवन्न धणं न देइ देवस्स।
नस्संतं समुवेक्खइ, सोवि हु परिभमइ संसारे ॥ ५५ ॥

—आदानम्-जिनालयों के निर्वाह के लिये राजा, मंत्री आदि के दिये हुए गाँव, खेत आदि का, अथवा उनकी आय का जो विनाश करता है। प्रतिपन्नम्-माता पिता आदिने देव के लिये दिया हुआ या स्वयं मंजूर किया हुआ द्रव्य जो नहीं देता और न खर्चता है। उपेक्षा-आदान की हुई वस्तुओं का भक्षण करने, विनाश करने और जिनालय के सिवा अन्य कार्यों में व्यय करनेवालों को नहीं रोकता। ये तीनों निश्चय से संसार में घूमते हुए दुःखों से पीड़ित होते हैं।

जिनद्रव्य की रक्षा और उसकी वृद्धि नये नये मकान बनवाने, उनको गिरवे रखने, सोना चादी के पाट समह करने उनका व्यापार चलाने, पेढ़ियाँ नियत कर अपनी मालिकी जमाने, वकील वेरीस्टरों के खीजे भरने, मोटरों में बैठने का मजा लूटने और मनमाना खर्च करने के लिये नहीं है। किंतु वह जिनालयों का सुधारा कराने, उनकी आशातना मिटाने, जीर्णोद्धार कराने, पूजोपकरण में वापरने और जहाँ प्रभुपूजा योग्य सामग्री का अभाव हो वहाँ उस अभाव को मिटाने के लिये है परन्तु आज सारा वातावरण इससे विपरीत दिखाई देता है जो अवाछनीय और हेय है।

प्रश्नकार—सिरेमलजी गुरा मु० सायला (मारवाड़)

१४३ प्रश्न—मतिज्ञानी और श्रुतज्ञानी कहाँ तक देख सकता है ?।

उत्तर—मतिज्ञानी द्रव्य से सर्व-द्रव्यों को, क्षेत्र से सर्व-क्षेत्रों को, काल से सर्व काल को और भाव से सर्व-भावोंको जान सकता है, देखता नहीं है। परन्तु जातिस्मरण ज्ञानवाला अपने सख्यात अतीत भवों को जान और देख सकता है। रत्नसार, विनयचन्द्रचरित्र और विशेषशतक में कहा है कि—

---

१ पुव्वभवा सो पिच्छइ, एग दो तिन्नि जाव नवग वा। उवरिं तस्स अविसओ सभ वओ जाइसरणस्स ॥ १ ॥

२ पूर्वनवजातिस्मरण नवभवान् प्र पश्यति, तन्मदिज्ञान १५३ भद।

जातिस्मरण ज्ञानवाला अपने पिछले एक, दो, तीन यावत् नौ भव तक देख सकता है, अधिक देखने का उसका स्वभाव नहीं है और यह मतिज्ञान का ही भेद है।

श्रुतज्ञानी सर्व-द्रव्यों, सर्व-क्षेत्रों, सर्व-काल और सर्व-भावों को जान सकता है पर देख नहीं सकता। अवधिज्ञान-सम्पन्न श्रुतज्ञानी द्रव्य से अनन्त रूपी-द्रव्यों को, क्षेत्र से सर्व लोक और अलोक में लोक-प्रमाण असख्यात खण्डों को, काल से असख्यात उत्सर्पिणी अवसर्पिणी प्रमाण अनागत काल को तथा भाव से अनन्ता भावों को जान और देख सकता है।

मन पर्यवज्ञान-सम्पन्न श्रुतज्ञानी द्रव्य से मनरूप से परिणत अनन्त प्रदेशात्मक पुद्गलस्कन्धों को, क्षेत्र से अधोदिशा में रत्नप्रभा के प्रथम प्रतर के ऊपरी तले के नीचे के तले को, तिर्यक्दिशा में ढाई द्वीप के सज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्तक जीवों के मनोगत परिणामों को और ऊर्ध्वलोक में ज्योतिषियों के ऊपरी तल को, काल से पल्योपमासख्येय भाग के अतीत अनागत काल को और भाव से सर्वभावों के अनन्तभाग-स्थित भावों को जान और देख सकता है, ऐसा जैनागमों का मन्तव्य है।

१४४ प्रश्न—कारु और नारु के ३६ भेद कौन से हैं ?।

---

१ जातिस्मरणतो मनुष्या नव भवान् पश्यति नत्वधिकान्। इद च मतिज्ञानभेद एव।

उत्तर—कारु और नारु ये शिल्पियों के भेद हैं। श्रीशुभशीलगणिकृत विक्रमचरित्र के ९ वें सर्ग में लिखा है कि—

चक्रिको मोचिको लोह–कारो रजकगछिकौ।
माछिकः शूचिको भिल्लो, जालिकः कारवो नव ॥४८॥
स्वर्णकृन्नापितः कान्दविकः कौटुम्बिकस्तथा।
मालिक काछिकश्चापि, ताम्बूलिकश्च सप्तमः ॥४९॥
गन्धर्वः कुम्भकार स्यादेते च नारवः स्मृताः।

—१ तेली, २ चमार, ३ लोहार, ४ धोवी, ५ गाछा, ६ नौकावाहक, ७ दरजी, ८ भील, ९ धीवर ये नौ कारु और १ सोनार, २ नाई, ३ कन्दोई, ४ कौटुम्बिक (कणवी) ५ माली, ६ काछिक, ७ तवोली, ८ गान्धर्व, ९ कुंभार ये नौ नारु कहे गये हैं।

१ मणिकार, २ काशीघटक, ३ सिलावट, ४ कडिया, ५ सुतार, ६ चितारा, ७ रगरेज, ८ यत्रवाहक, ९ वणकर ये नारु के और १ कलाल २ खारुक, ३ रात्री, ४ कुक, ५ मधु पाती, ६ भोई ७ नट, ८ चरट (भाँड) और ९ पारधी ये कारु के उपभेद हैं जो प्राचीन हस्त–लिखित पत्रों में लिखे मिलते हैं। इनके भेद उपभेद मिलाने से ३६ भेद होते हैं। शिल्पियों के जाति–विशेष के ये नाम समझना चाहिये।

प्रश्नकार—चुनीलाल खीमाजी कारशिया, वेडा (मारवाड)

१४५ प्रश्न—रावण क्या दश मुख से बोलता था ?।

उत्तर—राक्षसपति-भीमेन्द्रने मेघवाहनराजा को हजार फणिधरों से अधिष्ठित, मणिजटित हार दिया था जो करंडक में सुरक्षित नित्य पूजा जाता था। सूतिशय्या में रहते हुए रावणने उस रत्नहार को उठा कर अपने गले में पहन लिया था। हार के प्रभाव से रावण के दशमुख दीखने लगे इससे उसके पिताने उसका दशमुख या दशानन नाम रख दिया। रावण अपने स्वाभाविक मुख से ही बोलता था, पर वह दूसरों को दशों मुख से बोलता हुआ दिखाई देता था, जो रत्नहार का प्रभाव जानना चाहिये।

१४६ प्रश्न—कामशास्त्र, युद्धशास्त्र, अजैनशास्त्र और अपने सिद्धान्त के खंडन करनेवाले ग्रन्थों की आशातना और अक्षरात्मक पेपर, वेकारपत्र, कागजात आदि को जलाने या फेंक देने से दोष लगता है या नहीं ?।

उत्तर—जैनागमों में अक्षरश्रुत को भी ज्ञान माना गया है। इसलिये अक्षर रूप से लिखे हुए या छपे हुए पेपरादि ज्ञान ही माने जाते हैं। वे चाहे उपयुक्त हो चाहे अनुपयुक्त, उनकी आशातना नहीं करना चाहिये। यदि वे बेकार हों तो उनको ऐसी जगह डालना चाहिये जहाँ उनकी आशातना न हो। पेपर या कागजात में खाद्यवस्तु लेकर खाने और उनकी बेअदबी करने से ज्ञानावरणीयकर्म का बन्ध होता है। सौभाग्य-पञ्चमी की कथा में कहा है कि—

चीजों को खानेवाले पूजारी को पाप लगता है तो उन्हें चढ़ाने वालों को पाप क्यों नहीं लगता ?, देवार्पण चीजे जो बाजार में बिकती हैं उनको खरीदना या नहीं ? ।

उत्तर—देवार्पण खाद्य चीजों के खाने का आदश देवे तो चढ़ानेवाला पापभागी होता है, अन्यथा नहीं । अगर पूजारी अपनी अज्ञानता से या अपना हक समझ कर देवार्पण वस्तु को खाने अथवा लेवे उसका पाप उसीको लगता है, चढ़ानेवाले को नहीं । देवार्पण वस्तु जो बाजार में मिलती हैं, श्रावक उनको सदोष समझ कर नहीं ले सकता और न उन चीजों को इस्तेमाल कर सकता है । देवार्पित चीजों को न लेना यही दोषों से बचन का उपाय है ।

एसी बातों में वही पाप-भागी होता है जिसका मन पापजन्य क्रियाओं में सम्मिलित रहता है । जो केवल भक्तिभाव से किसी भी शुभ-क्रिया में प्रवृत्त होता है और उसका मन अन्य क्रिया में नहीं जाता और न प्रेरक रूप से पापादेश में प्रवृत्त होता, वह पाप का भागीदार कभी नहीं बन सकता, ऐसा शास्त्रमान्य सिद्धान्त है ।

१५० प्रश्न—किसी के पास, जिनालय या तीर्थसस्था में साधारणखाते का द्रव्य हो वह तीर्थों के झगड़े में, तत्सम्बन्धी साहित्य प्रचार में और अन्य कार्यों में लग सकता है या नहीं ? ।

उत्तर—धर्म, धर्मस्थान, जिनालय, असहाय स्वधर्मी, साधु-साध्वियों के उपकरण, जीवरक्षा, ज्ञान-दर्शनोपकरण, पाठशाला, साहित्यप्रचार, तीर्थरक्षा, तीर्थों के झगड़े और तीर्थों के झगड़े सम्बन्धी घर-घर में समाचार पहुचाने के लिये इस्तिहार ट्रेक्ट आदि कार्यों में साधारण-खाते का द्रव्य खर्च हो सकता है। लेकिन उसके लिये संघ की आज्ञा अवश्य होना चाहिये, अपनी इच्छा से नहीं खर्चा जा सकता।

श्राद्धविधिटीका में लिखा है कि-श्रावक साधारण के घर, हाट, जमीन, बरतन, आदि को अपने उपभोग में नहीं ले सकता। यदि लेना पड़े तो उनका कम नहीं, उचित भाड़ा देना चाहिये। अगर भाड़ा न दे, या कम देवे तो उसका उसको बड़ा अनिष्ट फल भुगतना पड़ता है। यही बात देवद्रव्य, ज्ञान और गुरुद्रव्य के विषय में समझना चाहिये।

यात्रागमन, संघसेवा आदि उचित कार्यों में साधारणखाते की कुछ भी रकम देना पड़े तो संघ में जाहिर करके साधारण के नाम से देना चाहिये, अपने नाम से नहीं। घर या अपनी दूकान की रकम में से जो रकम साधारणखाते अर्पण कर दी गई है और वह अपनी सत्ता या निगरानी में सुरक्षित है। वह अपने या कुटुम्ब के काम में नहीं ली जा सकती और न उस रकम से खुद का यात्रागमन, गुरुदर्शन, आदि हो सकता है। साधारणखाते से साधु-साध्वियों को दिये गये कागज,

पुस्तक, पट्टी, आदि भी श्रावक के काम नहीं आ सकते। जो कोई साधारणद्रव्य को अपने गृह–कार्य में वापरता है, वह जिनदास के समान ससार में परिभ्रमण करता है और उसका उसको कई गुना ऋण चुकाना पड़ता है।

जिनदासने साधारणखाते के बारह द्रम्म लेकर अपने कार्य में लगा दिये। इससे जिनदास को नरक, एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय और पशुयोनियो में बारह हजार वार जन्म लेकर भारी दु खानुभव करना पडा। अन्त में उसने किसी श्रीमन्त सेठ के घर जन्म लिया, उसका नाम 'पुण्यसार' रक्खा। बालकपन में पुण्यसार के मा बाप मर गये और सारा धन नष्ट हो गया। वह अत्यन्त दु खी हो गया, भाग्ययोग से उसको किसी ज्ञानी मुनिवर का योग मिल गया। पुण्यसारने पूछा–गुरुदेव मैंने ऐसा क्या पाप किया है जिससे प्रतिदिन मेरे ऊपर विपत्तियाँ सवार हो रही है ?। मुनिने कहा–तुमने आज से बारह हजार भव पूर्व साधारणखाते के बारह द्रम्म अपने घरकार्य में खर्च किये थे। इतने भव–भ्रमण करते हुए भी वह पाप अभी क्षीण (नाश) नहीं हुआ। वह ऋण जब तक तुम नहीं चुका दोगे तब तक तुम्हारा अभ्युदय नहीं हो सकता।

यह हाल सुन कर पुण्यसारने प्रतिज्ञा की कि–मैं बारह द्रम्म के एवज में बारह हजार द्रम्म साधारण–खाते में जब तक

जमा नहीं कराऊं तब तक भोजन और वसन के सिवा कुछ भी रकम अपने पास नहीं रक्खूगा। प्रतिज्ञा के अनुसार धीरे-धीरे कमा कर पुण्यसारने साधारण में सब रकम जमा करा दी। पुन्यदशा भी उसकी बढ़ने लगी और थोड़े ही दिनों में वह पूजीपति बन गया। फिर उसने सावधानी से साधारणद्रव्य की रक्षा, उसकी वृद्धि और सर्वानुमत से उसको उचित कार्यों में व्यय करके पुण्योपार्जन किया। इस कारण जो लोग साधारण-द्रव्य का निज कार्य में व्यय करते हैं, वे अनिष्ट फल पाते हैं और जो उसकी रक्षा, वृद्धि तथा सर्व सम्मति से उचित कार्यों में उसको व्यय करते हैं वे ससार में अक्षय्य पुन्योपार्जन करते है।

१५१ प्रश्न—आषाढसुदि १४ से कार्तिकसुदि १४ तक चोमासा पूर्ण हो जाता है। परन्तु जिस प्रान्त में कार्तिकवदि से माह तक बारिश जारी रहती है, वहाँ हरितकाय का नियम और व्रत का पालन किस तरह किया जाय ?।

उत्तर--शास्त्रकार खूब सोच-विचार के द्रव्य-क्षेत्रादि को लक्ष्य में रख कर ही प्रत्येक मर्यादा को लिपिबद्ध करते हैं। कल्पसूत्र की सभी टीकाओं और प्रामाणिक आगम-ग्रन्थों में आषाढसुदि १४ से कार्त्तिकसुदि १४ तक ही वर्षावास की मर्यादा कायम की है और उसको सर्व गच्छनायकोंने निर्विवाद मान्य रक्खी है। अतएव वर्षावास सम्बन्धी नियमित

र्वाराधन और गृहीत नियमों का पालन उसीमें करना हित कारक है। शास्त्रविहित नियम का परिवर्तन होना किसी हालत में अच्छा नहीं है। क्योंकि शास्त्रीय सर्वमान्य मर्यादा का लोप करने या उसका परिवर्त्तन करने से जिनाज्ञाभग दोष लगता है। आगमोक्त मार्ग का उच्छेद करने, उन्मार्ग की प्रवृत्ति बढाने और उसकी पुष्टि करने से अनन्त ससार में भ्रमण करना पडता है। सूयगडागसूत्र के प्रथम श्रुतस्कन्ध के ११ वें अध्ययन में कहा है कि—

> सुद्ध मग्ग विराहित्ता, इहमेगे उ दुम्मती ।
> उम्मग्गगया दुक्ख, घायमेसति त तहा ॥ २९ ॥

—इस ससार के अन्दर उन्मार्ग–प्रवृत्त कई दुष्ट बुद्धिवाले लोग शुद्धमार्ग की विराधना कर दु ख का नाश करना चाहते हैं, परन्तु अन्त में वे उसी विराधना से सैकडों जन्म मरण को ढूँढते हैं–आमत्रण देते हैं ।

> उम्मग्गदसणा मग्गनासणा दवदव्वहरणेहिं ।
> दसणमोह जिणमुणिचेइयसघाइ–पडिणीओ ॥ ५५ ॥

से जीव दर्शनमोहनीय कर्म बाधता है, एवं बोधिलाभ से वचित रहता और ससार में परिभ्रमण करता है ।

इसलिये शास्त्रोक्त मर्यादा का परिवर्त्तन और उसकी अव-हेलना करना किसी हालत में हितावह नहीं है। जिस देश या प्रान्त में कार्त्तिक से माह मास तक वर्षा बरसती है वहाँ 'अधिकस्याधिक फल' की नीति के अनुसार हरितकाय खाने और नियमित गमनागमन आदि का नियम फिर भी पालन कर लिया जाय तो विशेष लाभ कारक है। आगे नियम पालक की जैसी इच्छा, परन्तु नियमित वर्षावास में तो नियम का पालन अवश्य होना ही चाहिये ।

१५२ प्रश्न—पशुप्राणियों का आयुष्य किस प्रकार कितना समझना ?।

उत्तर—आरकों के अनुसार मनुष्यों का जितना आयुष्य होता है उतना ही आयुष्य हाथी, सिंह, अष्टापद, आदि प्राणियों का होता है। उनके चौथे भाग का अश्वादि का, पाचवें भाग का गो, भैंस, हरण, ऊट, गर्दभ आदि का, आठवें भाग का बकरा, घेटा, शृगाल आदि का और दशवें भाग का कुत्ते आदि का आयुष्य होता है, ऐसा श्रीरत्नशेखरसूरिरचित 'लघुक्षेत्रसमास' ग्रन्थ में लिखा है। यह अधिक से अधिक आयुष्य समझना चाहिये । वार्त्तमानिक विद्वानोंने आधुनिक पशुप्राणियों का आयुष्य इस प्रकार निश्चित किया है—

तियच	वर्षायु	तिर्यंच	वर्षायु	तिर्यंच	वर्षायु
हाथी	१२०	बकरी	१६	पपैया	३०
सिंह	१००	शृगाल	१३	तोता	१२
व्याघ्र	६४	बिल्ली	१२	साप	१२०
कच्छप	३८०	हंस	१००	बिच्छु	६ मास
घोड़ा	४०	सारस	६०	कसारी	४ मास
बैल	२५	गिल्हरी	१	जु	४ मास
भैंस	२५	ऊंदर	२	मच्छ	१०००
गाय	२५	सुमलिया	१४	बडवागुल	५०
ऊंट	२५	मुरगा	६०	गिरगट	१
सूर	५०	बुगला	६०	बन्दर	४०
मृग	२४	क्रौंच	६०	मयूर	४०
गर्दभ	२४	घुग्घु	६६	मुर्गी	३४
गैंडा	४०	शमली	५०	भालू	३३
कुत्ता	१६	चीबरी	५	गिद्ध	११८

क्षेत्रान्तर विशेष से न्यूनाधिक आयुष्य भी होना संभव है, परन्तु ऊपर की तालिका में आयुष्य सामान्य रूप से बताया गया है जो वर्त्तमान पंचमारक में उत्कृष्ट जानना चाहिये ।

---

१ इस्वी की १३ वीं सीकी में जनकवि-श्रीहंसदेव-रचित 'मृग-

१५३ प्रश्न—देवपूजादि कार्यों में रेशमी कपडा वापरना अच्छा है या नहीं ?।

उत्तर—असख्यात जीवों के रस से बनाया गया रेशमी कपडा पूजादि कार्यों और सासारिक कार्यों में जैनों को नहीं वापरना चाहिये। ऐसे वस्त्र वापरने से अहिंसा मूलक जैनधर्म पर कलक चढ़ता है। पूर्वकाल में रेशम वनस्पति जन्य होता था और उसमें परीश्रम एव खर्च अधिक होता था। परन्तु आज एक गज रेशम बनाने में चालीस हजार कीडों का विनाश होता है। उस पर पालिश लाने के लिये प्राणियों की चर्बी काम में ली जाती है। अतएव करोडों जन्तुओं की आर्तो से निष्पन्न रेशम शिष्ट लोगों के लिये किसी हालत में उपयुक्त नहीं है। यही बात चर्बीवाले वस्त्रों के विषय में जानना चाहिये। देवपूजादि कार्यों मे सूत के बने हुए श्वेतादि शुभवर्णवाले वस्त्र ही वापरने की शास्त्रकारों की आज्ञा है। सण के बने हुए लपेटादि वस्त्र भी वापरने में कोई हरकत

पक्षीशास्त्र' नामक पद्यसस्कृत-ग्रन्थ में पशु पक्षियों का आयुष्य इस प्रकार लिखा गया है—

हाथी का १०० वर्ष, गधे का २२, ऊट का ३०, घोडे का २५ सिंह, भैंस, बैल गौ आदि का २०, बाघे का १६, गध का १२, बन्दर, कुत्ता, सूअर आदि का १०, बकरे का ९, हस का ७, मोर का ६, कबूतर का ७ चूहा, खरगोश आदि का एक वर्ष छ मास का आयुष्य होता है।

अनेकान्त' मासिकपत्र, ५ वर्ष, १० किरण, ५४४ पृष्ठ, नवम्बर १९४३

नहीं है। सूतिवस्त्र भी असंधित और निर्दोष होना चाहिये। शास्त्रकारों ने कहा भी है कि—

न कुर्यात् सन्धित वस्त्र, दवकर्मणि भूमिप!।
न दग्ध न तु वै छिन्न, परस्य तु न धारयेत् ॥ १ ॥

कटिस्पृष्ट तु यद्वस्त्र, पुरीष येन कारितम्।
समूत्रमैथुन वापि, तद्वस्त्र परिवर्जयेत् ॥ २ ॥

एकवस्त्रो न भुञ्जीत, न कुर्याद् देवतार्चनम्।
न कञ्चुक विना कार्या, देवार्चा स्त्रीजनेन तु ॥ ३ ॥

—देवपूजा मे साँधे हुए, जले हुए, फटे हुए और दूसरों के पहने हुए वस्त्र का त्याग करे। तथा कटि (कमर) को छूए हुए, जिससे हाजत मिटाने गये, पेशाब किया ओर स्त्री प्रसग किया हो वैसे वस्त्र का भी त्याग करे। एक वस्त्र से भोजन और देवपूजा भी न करे। कचुक पहने विना स्त्रियों को भी दवपूना नहीं करना चाहिये।

१५४ प्रश्न—शास्त्रों में केसरपूजा का लेख है या नहीं ?।

उत्तर—धर्मसग्रहग्रन्थ के द्वितीय अधिकार में कहा है कि 'नवाङ्गेषु कर्पूरकुङ्कुमादिमिश्रगोशीर्षचन्दनान्यर्चयेत्' जिनेश्वर-प्रतिमा के नव अङ्गों में कपूर और केशर मिश्रित चन्दन से पूजा करे। इसी प्रकार श्राद्धविधि, आचार-

दिनकर आदि शास्त्रकारोंने भी लिखा है। इससे केशरपूजा शास्त्रोक्त ही समझना चाहिये।

आज कल मिलावटी अशुद्ध केशर मिलने के कारण कुछ लोग जिनपूजा में केशर का बॉयकाट (निषेध) करते हैं और कहते हैं कि-शास्त्रों में केशरपूजा का लेख नहीं है। यह केवल उनका हठाग्रह समझना चाहिये। हाँ, केवल केशर से पूजा करने से प्रभुप्रतिमा पर दाग पड जाते हैं, इसलिये उसमें कपूर, बरास और चन्दन मिक्स करके पूजा करना चाहिये जिससे प्रतिमा पर दाग न पडे। केशर भी परीक्षा पूर्वक वापरना चाहिये।

१५५ प्रश्न—हाथीदाँत का चूडा पहनना अच्छा है या नहीं ?।

उत्तर—' अहिंसा परमो धर्म. ' यह जैनों का मुख्य सिद्धान्त है। हाथीदाँत का चूडा हिंसा मूलक है। इसके लिये प्रतिवर्ष हजारों हाथियों का वध होता है। तज्जन्य पाप के भागीदार उसके पहननेवाले होते हैं। अतएव अहिंसा-धर्म के प्रेमियों को हाथीदाँत के बने चूडों का वापरना अच्छा नहीं है। जैनशास्त्रों में पचेन्द्रिय-पशुओं के हाड की भी असज्झाय (अस्वाध्याय) मानी गई है। इसलिये धार्मिकदृष्टि से भी अस्थिमय चूडे का पहनना अनुचित समझना चाहिये।

१५६ प्रश्न—मन्दिर के प्रवेश-द्वार के ऊपर प्रतिमा

है वह भक्ति-चैत्य है। २ मंगल के निमित्त गृह-द्वार के उत्तरासंग क मध्य भाग में उत्कीर्ण जो जिनबिंब होता है वह मंगल-चैत्य है। ३ किसी एक गच्छ के प्रतिबन्ध (अधिकार) का जिनालय हो वह निश्राकृत-चैत्य है। ४ सर्व-गच्छों के अधिकार का सार्वजनिक जिनालय हो वह अनिश्राकृत-चैत्य है और ५ त्रिलोक-स्थित अकृत्रिम सिद्धायतन और उनमें विराजमान प्रभु-प्रतिमा शाश्वत-चैत्य हैं। इस भाँति पाच प्रकार के चैत्य समझना चाहिये (प्रवचनसारोद्धार ७९ द्वार)

प्राचीन काल में श्रावक (जैन) विचक्षण, शास्त्रज्ञ, उपयोगशाली और आशातना के परिहारक थे। उनके मकानों में कार्य-विशेष के लिये अलग-अलग द्वार बने रहते थे। इसलिये उनके गृह-द्वार के उत्तरंग में मंगलार्थ या जैनी होने की पहिचान के निमित्त जिनप्रतिमा उत्कीर्ण रहती थी। परन्तु जब से श्रावकों में वैसा जानपना नहीं रहा, तब से उत्तरंग में जिनप्रतिमा-उत्कीर्ण की प्रथा बन्द कर दी गई।

१५९ प्रश्न—पुराने मन्दिरों में स्तम्भादि पर नंगे चित्र उकेरे हुए दिखाई पड़ते हैं, वे क्या शिल्पोक्त हैं ?।

उत्तर—पुराने जिनालयों के स्तम्भ आदि पर जो नंगे चित्र उत्कीर्ण दिखाई देते हैं, वे युगलिक स्त्री-पुरुषों के हैं और वे युगलिकों का इतिहास जानने के लिये उपयुक्त हैं। उस जमाने में ऐसे चित्रोत्कीर्ण की प्रथा थी और वह असभ्य नहीं मानी

जाती थी। मडोवरजाति के जिनालय के चारो ओर नृत्य करती हुई पुतलियाँ बनाने का लेख शिल्पशास्त्र में है। उन्हीं में युगलिक नर-नारी की पुतलियाँ भी समझ लेना चाहिये। जब से वैसे चित्रों का मार्मिक रहस्य न समझने के कारण लोगों को उनसे घृणा होने लगी तभी से वैसे चित्रों का बनाना (उकेरना) रोक दिया गया।

१६० प्रश्न—घरमन्दिर किसको कहते हैं और घर तथा गृह-मन्दिर की नींव एक हो वहाँ जन्म मरणादि के सूतक की आशातना लगती है या नहीं ?।

उत्तर—शिखर से रहित गुम्बजदार या गुम्बज रहित मन्दिर को गृह-मन्दिर कहते हैं। वह एक गृहस्थ का बनवाया हो या सार्वजनिक। अथवा धर्मशाला मे हो या उपाश्रय में, पर शिखर-शून्य जिनालय घर-मन्दिर ही माना जाता है ऐसी व्यावहारिक मर्यादा है।

मकान और गृह-मन्दिर की नींव एक हो परन्तु दोनों के बीच मे भींत हो और दोनों का निर्गमन द्वार अलग-अलग हो, तो जन्म मरणादिक सूतक-जन्य आशातना नहीं लगती। कारण कि दोनों की सीमा अलग-अलग है। दोनों का निर्गम मार्ग एक हो तो आशातना लगती है।

किसीके मकान की ऊपरी दूसरी या तीसरी मजल पर गृह-जिनालय हो ... की मजल मे निवास हो। जिना-

लय की हद में दर्शन पूजनादि विशेष कार्य के सिवा गमन न होता हो वहाँ भी जन्म मरणादि के सूतक से आशातना नहीं लगती, ऐसी शिष्ट-परम्परा है। हाँ! सूतक निवृत्त हुए बिना घरवाले स्त्री पुरुषों को प्रभु-की पूजा नहीं करना चाहिये। अवग्रह के बाहर खड़े रह कर प्रभु-दर्शन कर लेने में किसी तरह की दोषापत्ति नहीं है। सूतकवालों को चैत्यवन्दनक्रिया करना हो तो मन में करनी चाहिये।

१६१ प्रश्न—पुराने मंदिरों में गुरुमूर्त्ति देखने में नहीं आती, अब प्रचार क्यों?, क्या शास्त्र में कहीं लेख है और वह मूल नायकजी से बड़ी बनाना योग्य है या छोटी?।

उत्तर—सिद्धाचल, गिरनार, आबु, राणकपुर, करेडा, नाडलाइ, नाडोल, साडेराव, नाणा, गुड़ा, हमीरपुर, आदि कई जगह के पुराने जिनालयों में उस समय के आचार्यों की मूर्त्तियाँ और चरण विद्यमान हैं। इससे यह प्रवृत्ति नवीन नहीं, प्राचीन है और इसीसे अब भी इसका प्रचार अधिक है जो शास्त्रविहित है, कल्पित नहीं। गणधर, मुनिवर और आचार्य के स्तूप, चरण और बिम्ब भक्ति या साधर्मिक चैत्य में माने गये हैं—जिनका उल्लेख शास्त्रों में मौजूद है। आचारदिनकरवृत्ति, प्रतिष्ठा-कल्प और समाचारी ग्रन्थों में आचार्य आदि की मूर्त्तियों की प्राण-प्रतिष्ठा के मंत्र भी अलग बतलाये गये हैं। प्रवचनसारोद्धारवृत्तिकारने वारत्तक-महर्षी के आख्यान में लिखा है कि—

तत्पुत्रेण स्नेहात्परीतमानसेन देवगृह कारयित्वा रजोहरणमुखपोत्तिका–परिग्रहधारिणी पितृप्रतिमा तत्र स्थापिता। तत्र सत्रशाला च प्रवर्तिता । सा च साधर्मिकस्थलीति सिद्धान्ते भण्यते ।

—वारत्तक–महर्षी के पुत्रने अति–स्नेह–भाव से देवगृह (जिनालय) बनवा के उसमें रजोहरण (ओघा) और मुखपोत्तिका (मुखवस्त्रिका) धारण करनेवाली पितृप्रतिमा (वारत्तक–महर्षी की मूर्त्ति) विराजमान की और वहीं दानशाला शुरू की। यह स्थान साधर्मिकस्थली नाम से सिद्धान्त में कहा गया है ।

अतएव गुरु–मूर्त्ति–निर्माण की प्रथा शास्त्रीय है यह बिलकुल सन्देह रहित है । जिनालय में विराजमान करने के लिये गुरुमूर्त्ति मूलनायक–जिनप्रतिमा से छोटी बनवाना अच्छी है । गुरुमन्दिर में स्थापन करने के वास्ते यथेच्छा से बनवा लेने में किसी तरह की हरतक नहीं है ।

१६२ प्रश्न—दीवाली के दिन उघाड़े दीपक जलाये जाते हैं यह प्रथा सराहने योग्य है या नहीं ? ।

उत्तर—' दीपमालिका ' पवित्र त्योहार है । इसमें विवेक और यत्ना रखने की खास जरूरत है । यत्ना और विवेक के बिना इसकी सार्थकता नहीं होती । दीवाली के

दिन उघाड़े दीपक जलाने में यत्ना और विवेक का सर्वनाश होता है। इसलिये दीवाली के दिन उघाड़े दीपक जलाना सराहने योग्य नहीं है। काच के ढकनेवाले दीपक जला कर द्रव्य-दीवाली मनाना उघाडे दीपकों की अपेक्षा अच्छी है।

१६३ प्रश्न—वीरप्रभु का जन्म चैत्रशुक्ला १३ का हुआ है तो पर्युषण में जन्मोत्सव क्यों मनाना ?, और उसमें श्रीफल फोड़ना क्या शास्त्रोक्त है ?।

उत्तर—पर्युषण पर्व में भाद्रवासुदि १ को वीरप्रभु का जन्मोत्सव नहीं मनाया जाता, किन्तु जन्म वाचन का उत्सव मनाया जाता है जो शिष्ट आचार्यों की स्थापित और मान्य परम्परा है। इसमें श्रीफल (नारियल) फोड़ने की प्रथा शास्त्रोक्त नहीं, व्यावहारिक है। यह प्रथा अजैनों की देखा-देखी चल पड़ी है जो वास्तव में अच्छी नहीं है।

१६४ प्रश्न—प्रतिमा के आगे रखने का नैवेद्य श्रावक साधु को खाना कल्पता है या नहीं ?।

उत्तर—प्रभु-प्रतिमा के आगे चढ़ाने के उद्देश से बनाया या लाया गया, अथवा चढ़ाने के लिये कल्पित कर दिया गया नैवेद्य आदि साधु, श्रावक और जैनपूजारी को लेना खाना नहीं कल्पता। क्योंकि वह भी निर्माल्य और देवद्रव्य ही माना गया है। अतः उसके लेने और भक्षण करने से दोष लगता है।

१६५ प्रश्न—स्वप्न और पालणा की बोली की रकम किस खाते ली जा सकती है ?

उत्तर—अकबर-प्रतिबोधक सुविहिताचार्य श्रीमद्-विजय-हीरसूरीश्वरजी महाराजने हीरप्रश्नोत्तर के तृतीय प्रकाश मे जगमालऋषी के 'तैलादिमानेनादेशप्रदान शुध्यति न वा' इस प्रश्न का उत्तर देते हुए लिखा है कि—

तैलादिमानेन प्रतिक्रमणाद्यादेशप्रदान न सुविहिताचरितम्, परं क्वापि क्वापि तदभावे जिनभवनादिनिर्वाहाऽसम्भवेन निवारयितुमशक्यमिति ।

—तैल आदि की बोली मे प्रतिक्रमण प्रमुख में आदेश देना यह सुविहिताचार्य आचरित नहीं है । परन्तु कहीं कहीं अन्य साधन के अभाव में बोली के सिवा जिनभवन आदि का निर्वाह होना असम्भव होने से इस प्रथा को रोकना अशक्य है, अर्थात्-मिटाई नहीं जा सकती ।

इस उल्लेख से सिद्ध है कि बोली बोल कर आदेश देने की प्रथा शास्त्रोक्त और सुविहिताचरित नहीं है, किन्तु जिनभवनादि के निर्वाह के लिये अन्य साधन के अभाव में सघने इस प्रथा को कायम की है । इसलिये सघ अपने विचारानुसार स्वप्न और पालना की बोली की रकम जिनभवन आदि चाहे जिस खाते में ले जा सकता है और खर्च कर सकता है ।

१६६ प्रश्न—प्रतिष्ठा में देवताओं के भोगार्थ वलीबाकुला उछाला जाता है वह क्या जमीन पर नहीं पड़ता ?।

उत्तर—विघ्नोपशम के लिये प्रतिष्ठाओं में देवों को वली बाकुला का भोग दिये जाने का लेख प्रतिष्ठाकल्पग्रन्थों में विद्यमान है। इसलिये बलीबाकुला उछालने की रीति प्रचलित है। देवता कवलाहार नहीं करते, वे उसका अंश ग्रहण कर लेते हैं। शेष भाग जमीन पर गिर जाता है, ऐसी शिष्ट पुरुषों की मान्यता है।

१६७ प्रश्न—माणिभद्रादि अधिष्ठायकों की पूजा किस प्रकार करना और उनके सामने चावल, बादाम और नैवेद्य वगैरह चढ़ाना या नहीं ?।

उत्तर—माणिभद्र आदि अधिष्ठायक देव अविरत सम्यक्त्व दृष्टि हैं। इसलिये स्वधर्मी के नाते को लक्ष्य में रख कर साधारण या अपने घर की केशर से उनके तिलक कर देना चाहिये, उनकी यही पूजा है। परन्तु माणिभद्रादि देवों के सामने चावल आदि चढ़ाना अनुचित है। किसी कामना की

---

१ चक्रेश्वरी पद्मावती गोमुख और माणिभद्र आदि शासन के रक्षक देव हैं उनकी पूजा आरति उनके सामने चावलों का स्वस्तिक नहीं करना चाहिये और न धन-दौलत मागना। शिर्फ जिनमूर्त्ति के दर्शन किये बाद अधिष्ठायक देवों से जयजिनेन्द्र कह कर चले जाना। पूजा आरति तीर्थंकर १। ` है अधिष्ठायक देवों की नहीं। 'जैनमत-प्रभाकर' पृष्ठ २८६

सिद्धि के लिये दृढता न होने के कारण नैवेद्य या श्रीफलादि चढाने की वात अलग है। क्यों कि गरज से मनुष्य को अकरणीय कार्य भी करना पड़ता है।

१६८ प्रश्न—पूर्वाचार्यरचित शास्त्रों का अब परिवर्त्तन हो सकता है या नहीं ?।

उत्तर—सुविहित जैनाचार्यों के वनाये हुए शास्त्रों का हेर-फेर करना महा-दोष जनक है, अतएव उनका परिवर्त्तन नहीं हो सकता। वर्त्तमान समय के अनुसार सरल सस्कृत या भाषा में उनका अनुवाद और उन पर टीका टिप्पन लिखे जायँ तो कोई हरकत नहीं है, पर वे शास्त्रों से विरुद्ध नहीं होने चाहिये।

१६९ प्रश्न—जम्बूस्वामी तक मोक्षद्वार खुला था, उनके वाद वह क्या वन्द हो गया ?।

उत्तर—'मोक्षद्वार वन्द हो गया' इसका मतलब यह है कि जम्बूस्वामी के मोक्ष चले जाने वाद वर्त्तमान पचमारक में उत्कृष्ट सघयन और परिणामों के अभाव से कोई जीव सीधा मोक्ष नहीं जाता ऐसी शास्त्रीय शाश्वत-मर्यादा है।

१ मन पर्यवज्ञान, २ परमावधिज्ञान, ३ पुलाकलब्धि, ४ आहारकशरीर, ५ क्षपकश्रेणि, ६ उपशमश्रेणि, ७ जिनकल्प-मार्ग, ८ परिहारविशुद्धिचारित्र, ९ सूक्ष्मसपरायचारित्र, १० यथाख्यातचरित्र, ११ केवलज्ञान, १२ मोक्षगमन, जम्बूस्वामी के

मोक्ष गये बाद भरतक्षेत्र के पचमारक में इन १२ बोलों का विच्छेद (नाश) हो गया, ऐसा कल्पसूत्र के स्थविरावलि अधिकार के टीकाकारोंने लिखा है। दीपमालिकाकल्पग्रन्थ में कहा है कि—

मन्त्रतन्त्रौषधज्ञान–रत्नविद्याधनायुषाम् ।
फलपुष्परसादीना, रूपसौभाग्यसपदाम् ॥ १ ॥

सत्वसहननस्थाम्ना, यश कीर्तिगुणश्रियाम् ।
हानि' क्रमण भावाना, भाविनि पञ्चमारक ॥ २ ॥

अर्थात्–आनेवाले पाचवें आरक में मत्र, तन्त्र, औषध, ज्ञान, रत्न, विद्या, धन, आयुष्य, फल, पुष्प, रस, रूप, सौभाग्य, सत्व, सहनन, बल, यश , कीर्ति, गुण और शोभा, आदि की क्रमश हानि होती हो जायगी।

१७० प्रश्न—अजैनशास्त्रा में क्या जीवहिंसा, मद्यपान और मासभक्षण करने की आज्ञा दी हुई है ? ।

उत्तर—अजैनों के मान्य प्रामाणिक सिद्धान्तों में मद्यु पान, मासभक्षण और जीवहिंसा करने की बिल्कुल आज्ञा नहीं दी गई, ऐसा नीचे के उद्धृत प्रमाणों से सिद्ध होता है।

सुरा मत्स्यान्मधुमासमासव कृसरौदनम् ।
धूर्ते प्रवर्तित ह्येतद्, नैतद् वदषु कल्पितम् ॥ ९ ॥

—मदिरापान, मत्स्याशन, मधुपान, मासभोजन, मद्यपान और तिलमिश्रित भात का भोजन, ये सब धूर्तलोगों से प्रचलित

किये गये हैं, यह वेदोक्त मार्ग नहीं है। (महाभारत, शान्तिपर्व २६५ अध्याय)

जरायुजाण्डजोद्भिज्जस्वेदजानि कदाचन ।
ये न हिंसन्ति भूतानि, शुद्धात्मानो दयापराः ॥ ८ ॥

—मनुष्य, गौ, भैंस, बकरी सब प्रकार के पक्षी, वनस्पति, खटमल, मच्छर, डास, जूआ, लीख, आदि समस्त जन्तुओं की जो पुरुष हिंसा नहीं करते हैं वे ही शुद्धात्मा, दयापरायण और सर्वोत्तम हैं ।

वाराहपुराण, १३२ वा अध्याय, ५३२ वा पृष्ठ ।

योऽहिंसकानि भूतानि, हिनस्त्यात्मसुखेच्छया ।
स जीवँश्च मृतश्चैव, न क्वचित्सुखमेधते ॥ ४५ ॥

—निरपराधी जीवों को जो अपने सुख की इच्छा से मारता है वह जीता हुआ भी मृतप्राय (मुर्दा) है। उसको कहीं सुख नहीं मिलता, याने वह सुख से सदा वंचित रहता है। मनुस्मृति, ५ वा अध्याय, १८७ वा पृष्ठ।

इसीप्रकार भागवत, गीता, पद्मपुराण, पाराशरस्मृति, वृहन्नारदीयपुराण, वृहत्पारासरसंहिता, ब्रह्मवैवर्त्तकपुराण, आदि अनेक अजैन ग्रन्थकारोंने हिंसा, सुरापान, मधुपान एवं मांस-भक्षण करने का निषेध किया है और हिंसादि के प्रवर्त्तकों

को धूर्त्त, नास्तिक, धर्मनाशक, महामूर्ख और अव्यक्त सिद्धान्तानुयायी बतलाया है।

१७१ प्रश्न—अन्यजातीय पुरुष जैन हो जाय उसके साथ कैसा व्यवहार रखना चाहिये ?

उत्तर—अगर अन्य जातिवाला जैनी बन जाय तो उसको अपना स्वधर्मीभाइ समझ कर प्रति धर्म–कार्य में अपनाओ, हरतरह की सहायता पहुचाओ, उसके साथ भाई से भी अधिक प्रेम रक्खो और उसे विशेष धर्मनिष्ठ बनाने की शक्तिभर कोशिश करो। ऐसा व्यवहार रखने से उसका हार्दिक विश्वास दृढतर बनेगा और धर्मिष्ठ होगा।

१७२ प्रश्न—व्यभिचारी, चोर, हत्यारा और शूद्र जैनसाधु हो सकता है ?, शूद्रमुनि जिनालय मे जा कर दर्शन कर सकता है ?, और उसके साथ दूसरा साधु आहार व्यवहार आदि कर सकता है या नहीं ?।

उत्तर—अच्छे सयोग मिलने पर व्यभिचारी, चोर, हत्यारे, आदि का भी सुधारा हो सकता है। कहा भी है कि–' सत्सङ्गात् भवति हि साधुता खलानाम् ' उत्तम पुरुषों का समागम प्राप्त होने पर दुष्ट पुरुष भी उत्तम बन जाते हैं। इससे व्यभिचारी आदि पुरुष भी भी दीक्षा ले सकते हैं और कर सकते हैं।

- 'राजा चन्द्रशेखरने अपनी बहिन के साथ बहुत काल पर्यन्त भोगविलास किया और महोदयमुनि से उसका प्रायश्चित्त एव दीक्षा ले कर मासक्षमणादि तपस्या की। वह सिद्धाचल पर अनशन करके मोक्षपद पाया।' (शत्रुञ्जय-माहात्म्य) 'स्थूलिभद्रने १२ वर्ष तक कोशावेश्या से सभोग किया। फिर भागवती दीक्षा ले कर और कोशा को सदाचारिणी बना कर आत्मश्रेय किया'। (परिशिष्टपर्व) 'ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती की माताने दीर्घपृष्ठ-राजा के साथ बहुत काल तक व्यभिचार किया, उसके मरने बाद दीक्षा ले कर मुक्तिपद पाया।' (त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र) 'श्रेणिकपुत्र नन्दीषेणने दीक्षा छोड़ कर १२ वर्ष तक वेश्या से सभोग किया। बाद फिर दीक्षा ले कर आत्मकल्याण किया।' (महानिशीथसूत्र) 'आर्द्रकुमारने दीक्षा छोड़ कर २४ वर्ष तक श्रीमती के साथ सभोग किया और पुन दीक्षा ले कर अपना कल्याण किया।' (महावीरचरिय) 'चिलातीपुत्रने सुसुमाकन्या का शिर काटा और उपशम, विवेक और सवर इस त्रिपदी का मनन करके आत्मकल्याण किया।' (योगशास्त्र) 'सोदासराजाने मास-लोलुपता से अनेक बालकों का मास खाया, इस दुष्ट कर्म से वह राज्य-भ्रष्ट हो अटवी मे घूमता फिरा। वहाँ किसी मुनिवर के उपदेश से मास-लोलुपता का त्याग करके फिर से राज्य पाया और फिर दीक्षा ले कर आत्मकल्याण किया।' (त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र) 'छ-छ पुरुष और एक स्त्री की नित्य पट्-

मास पर्यन्त हिंसा करनेवाले अर्जुनमालीने प्रभु महावीरस्वामी के पास दीक्षा ले कर मोक्ष प्राप्त किया ।' (अन्तकृद्दशाङ्गसूत्र) 'गौ, बाल, स्त्री और ब्रह्महत्या करनेवाले दृढप्रहारीने दीक्षा ले कर मुक्ति प्राप्त की ।' (योगशास्त्र) 'द्यूतक्रीडा-रक्त पांडवोंने महाभारत युद्ध मे लाखों प्राणियों की हत्या की, बाद दीक्षा ले कर सिद्धाचल तीर्थ पर मुक्तिपद पाया ।' (पाडवचरित्र) 'प्रभवचोरने पाचसौ चोरों के साथ श्रीसुधर्मस्वामी के पास भागवती दीक्षा लेकर स्वपर का कल्याण किया।' (परिशिष्टपर्व) 'तस्करवृत्तिवाले पाचसौ सुभटोंने आर्द्रकुमार महर्षी के पास दीक्षा ले कर अपना उद्धार किया ।' (महावीरचरित्र) इत्यादि अनेक शास्त्रीय उदाहरणों से सिद्ध होता है कि-अत्याचारी स्त्री पुरुष भी दीक्षा ले कर उसको यथावत् पालन करके स्वपर का कल्याण कर सकते हैं । नीतिकारों का कथन भी है कि-' महानुभाव-समर्ग, कस्य नोन्नतिकारक ।' उत्तम पुरुषों का या उनके शिष्ट-मार्ग का सहारा मिलने पर किसकी उन्नति नहीं होता ?।

प्रभु महावीरस्वामीने चारों वर्णों को समान रूप से अपना कर उनको धर्म के हकदार बतलाये हैं । सूत्रों मे इस विषय के अनेक उदाहरण विद्यमान हैं । अतएव धार्मिक-दृष्टि से शूद्र को जैनसाधु बनाने मे किसी तरह की बाधा मालूम नहीं होती। जब से वर्ण-विभाग पड कर एक दूसरे का पारस्परिक सम्बन्ध विच्छेद हो गया, लोग शूद्रों को अस्पृश्य मानने लगे और शूद्र

के साथ सम्बन्ध रखनेवालों की निन्दा करने लगे, तभी से शूद्र को जैनसाधु बनाना बन्द हो गया। अगर कोई शूद्र अपने आप जैनसाधु बन भी जाय तो लोकापवाद के कारण उसके साथ साधु आहारादि व्यवहार नहीं रख सकते और जिनालय में जा कर रंगमण्डप में या बाह्य-द्वार पर खड़े रह कर वे प्रभु-दर्शन कर सकते हैं। यही नियम कुष्टरोगापन्न के लिये समझना चाहिये।

१७३ प्रश्न—श्रावक नाटक, सिनेमा, खेल-तमासे, मेला प्रमुख देख सकता है या नहीं ?।

उत्तर—धार्मिक भावना के नाशक, आत्मगुण के घातक, विषयवासना, हास्य, कुतूहल और कषायभाव के वर्द्धक नाटक, सिनेमा, खेल आदि श्रावकों को नहीं देखना चाहिये। ये अनर्थ दण्ड के कारण हैं, इनको देखने से अतिचार दोष लगता है। आठवें अनर्थदण्ड-विरमण अतिचार में लिखा भी है कि—'नाटक प्रेक्षणक जोया' अर्थात्-नाटक, सिनेमा और प्रेक्षणक-खेल-तमासे आदि देखे हों तो उसका मिच्छामि दुक्कडं देता हूं। इससे श्रावक के लिये नाटक सिनेमादि देखना निषिद्ध है। धर्म से सम्बन्ध रखनेवाले मेला-खेला देखने में किसी तरह की बाधा नहीं है। क्योंकि धार्मिक मेले यात्रा स्वरूप माने गये हैं।

१७४ प्रश्न—क्या माता, पिता आदि की अनुमति के बिना दीक्षा दी जा सकती है ?, बालदीक्षा क्या शास्त्रोक्त है ?, और पहले जमाने में दीक्षा के लिये आज्ञा की जरूरत थी या नहीं ?

उत्तर—माता, पिता, भाई, स्त्री, काका, अथवा जिन वारिस दारों का हक हो उनमें से जो मौजूद हों उनकी अनुमति मिलने पर ही दीक्षा देना चाहिये। अगर दीक्षा लेनेवाले की भावना तीव्र हो और उसके पीछे कोई हकदार झगड़ा करने जैसा न हो तो अनुमति के विना भी दीक्षा देने में किसी तरह की हरकत नहीं है ?

बाल के तीन भेद हैं—जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट। जन्म से चार वर्ष तक का जघन्य, पाच–छ वर्ष तक का मध्यम और सात–आठ वर्ष से १६ वर्ष तक का उत्कृष्ट बाल कहलाता है। इनमें उत्कृष्ट आठ वर्ष से सोलह वर्ष तक की अवस्थावाले की दीक्षा बालदीक्षा समझना चाहिये। जैनशास्त्र और ऐतिहासिक जैनपट्टावलि–ग्रन्थों में बालदीक्षा सम्बन्धी अनेक उदाहरण उपलब्ध है। पूर्व काल में भी उपरोक्त नियम से दीक्षा दी जाती थी और अब भी दी जा रही है। हाँ किसी के बालक–बालिकाओं को फुसला, भगा और छिपा कर दीक्षा देना शास्त्रोक्त नहीं है। श्रीसंघदासगणिक्षमाश्रमणरचित–पञ्चकल्पभाष्य में कहा गया है कि—

> करपादकन्ननासिय, उट्ठविहुणा य वामणा वडभा।
> खुज्जा पंगुलकुंटा, काणा एए अदिक्खेया ॥ १ ॥

—हाथ, पैर, कान, नाक और होठ से रहित, वामन, वडभ, कूबड़ा, लगड़ा, ठूंटमुंट और एकाक्षी इतने मनुष्य दीक्षा

देने योग्य नहीं हैं। बृहद्दीक्षा को लक्ष्य में रख कर स्थानाङ्गसूत्र के तृतीयस्थानक मे लिखा है कि—

तओ सेहभूमिओ पण्णत्ताओ, तजहा—उक्कोसो, मज्झिमा, जहन्ना। उक्कोसा छम्मासा, मज्झिमा चउम्मासा, जहन्ना सत्तराइंदिया।

—तीन प्रकार की शिक्षा—भूमि कही हैं—उत्कृष्ट, मध्यम और जघन्य। उत्कृष्ट से छ महिने, मध्यम से ४ महिने और जघन्य से ७ दिन तक के दीक्षित शिष्य को बड़ी दीक्षा देना। व्यवहारसूत्रकारने लिखा है कि—

नो कप्पइ निग्गथाण वा निग्गथीण वा, खुड्डग वा खुड्डिय वा ऊणट्ठवासजाय उवट्ठावेत्तए। कप्पइ निग्गथाण वा निग्गथीण वा खुड्डग वा खुड्डिय वा साइरेगअट्ठवास-जाय उवट्ठावेत्तए।

—साधु अथवा साध्वी, बाल—शिष्य अथवा बाल—साध्वी को आठ वर्ष पूर्ण हुए बिना बड़ी दीक्षा देना नहीं कल्पती। कुछ अधिक आठ वर्ष की अवस्था होने पर बड़ी दीक्षा देना कल्पती है। इससे बालक को दीक्षा देना सूत्राज्ञा विरुद्ध नहीं है।

१७५ प्रश्न—पचमारक में मनुष्यों का ज्यादा से ज्यादा आयुष्य कितने वर्ष का होता है ?।

उत्तर—जम्बूद्वीप का जो भरतक्षेत्र है, उसके दो विभाग

हैं–एक दक्षिण–भरत और दूसरा उत्तर–भरत। दक्षिण–भरत के अवसर्पिणीकाल के पचमारक में मनुष्यों का उत्कृष्टायु जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिसूत्र के लेखानुसार १२० वर्ष और श्रीरत्नशेखरसूरिरचित–लघुक्षेत्रसमासग्रन्थ के कथनानुसार १३० वर्ष का होता है। युगप्रधानयत्र में प्रथमोदय के अन्तिम युगप्रधान का आयुष्य १२८ वर्ष का लिखा है। इससे मालूम होता है कि दक्षिण भरत के पाचवें आरक मे अधिक से अधिक मनुष्यों का आयुष्य १२० वर्ष से १३० वर्ष तक का जानना चाहिये।

जम्बूद्वीप के उत्तर–भरत के पचमारक मे मनुष्यों का आयुष्य तीन सौ वर्ष का उत्कृष्ट होता है। भद्रबाहुसहिता में लिखा है कि–धनलग्न मे जन्म होनेवाले की कुडली में आठवा भवन ग्रह–शून्य हो, शनि या शुक्र की दशा मे जन्म हुआ हो, मीन का गुरु और तुला के शनि, शुक्र हों उसका आयुष्य २१० वर्ष का होता है। आवश्यकसूत्र की हारिभद्रीयवृत्ति म कहा है कि–'आर्यरक्षितसूरिजी महाराजने वृद्धविप्र के रूपवाले इन्द्र के हाथ देख कर २००–३०० वर्ष के आयुष्य की विचारणा करके कहा कि–यहाँ इससे अधिक आयुष्य नहीं है। अत आप प्रथम स्वर्ग के इन्द्र हैं और आपका आयुष्य दो सागरोपम का है।'

इससे उत्तर–भरत के पाचवें आरक में मनुष्यों का अधिक से अधिक आयुष्य तीनसौ वर्ष का सिद्ध है। आज अमरिका आदि प्रदेशों १३० में वष से २०७ वर्ष की अवस्थावाले

मनुष्य पाये जाते हैं। अतएव उपरोक्त शास्त्रीय लेखों के विषय में किसी तरह का सन्देह नहीं है।

प्रश्नकार—मुनिश्रीन्यायविजयजी मु० उज्जैन (मालवा)

१७६ प्रश्न—स्व पर वैरी कौन है ?।

उत्तर—स्व पर वैरी वह है जो अपने बालक बालिकाओं को अच्छी शिक्षा नहीं देता–जिससे उनका जीवन खराब होता है और उनका जीवन बिगड़ जाने से उसको भी कष्ट उठाना पडता है, अपमान भोगना पडता है और सत्समागम के लाभों से वंचित रहना पडता है।

स्व पर वैरी वह है जो अपने बालकों की छोटी अवस्था में शादी करता है–जिससे उनकी शिक्षा मे बाधा पडती है और वे सदा दुर्बल, रोगी एवं उत्साहविहीन बने रहते हैं, अथवा अकाल में ही काल के गाल में चले जाते हैं। उनकी इन अवस्थाओं से उसको भी बराबर दुःख भोगना पडता है और हर जगह हताश रहना पडता है।

स्व पर वैरी वह है जो धन का ठीक साधन पास में न होने पर भी प्रमाद आदि के वशीभूत हो रोजगार धन्धा छोड बैठता है, कुटुम्ब के प्रति अपनी जिम्मेदारी को भूल कर आजीविका के लिये कोई पुरुषार्थ नहीं करता और इस तरह अपने को चिन्ताओं में डाल कर दुःखित करता है और अपने

आश्रित जनों को भी उनकी आवश्यकताएँ पूरी न करके कष्ट पहुचाता है। इसी प्रकार जो हिंसा, असत्य, चोरी, कुशी लादि दुष्कर्म करता है। ऐसे आचरणों के द्वारा वह दूसरों को ही कष्ट तथा हानि नहीं पहुचाता, किन्तु अपनी आत्मा को भी पतित करता है और पापों से बाधता है जिनका दु खदाई अशुभ फल उसे इसी जन्म अथवा अगले जन्म में भोगना पडता है।

जो लोग एकान्त के ग्रहण में आसक्त हैं, सर्वथा एकान्त पक्ष के पक्षपाती अथवा उपासक हैं और अनेकान्त को नहीं मानते। वस्तु में अनेक गुणधर्मों के होते हुए भी एक ही गुण धर्म रूप को अगीकार करते हैं वे अपने और पर के वैरी हैं। ऐसी भावनावाले लोग मिथ्यावासना में मत्त रह कर पर को दुर्गतिपात्र बनाते हैं और खुद दीर्घससारी बनते हैं।

१७७ प्रश्न—मक्खियों की उत्पत्ति कहाँ किस प्रकार से कितनी सख्या में होती है ?।

उत्तर—मक्खियों की उत्पत्ति अशुचि स्थानों में होती है ऐसा जैनशास्त्रकारों का मन्तव्य है। आजकल के वैज्ञानिकों का कहना है कि–मक्खियों का उत्पत्ति–स्थान गन्दगी है। तबेले की लाद, छाणे की खात और सडे हुए गारे में मक्खी अपने इडे रखती है, एक बार में १०० या १५० इंडे रखती है। एक मक्खी चार–छ अठवाडिया में चार–छ

वार या इससे अधिक वार इंडा रखती है, उसमें से ईलियाँ पैदा हो चार–छ दिन में मक्खी के रूप में उड़ जाती हैं। एक मक्खी प्रति–मास अपने पुत्र, पौत्र और प्रपौत्र के रूप से ५० करोड़, ६२ लाख, ५० हजार इंडे रखती है उसमें से कई नष्ट हो जाते हैं। परन्तु एक मक्खी निर्विघ्न एक मास में सारे हिन्दुस्तान की मानव संख्या के बराबर प्रजा पैदा कर देती है। मक्खी के ६ पैर, दो पांख, एक सूढ और आठ हजार कीकियाँ होती हैं। इसके सारे शरीर पर मवाले ऊगते हैं, पैरों पर जाड़े वाल होते हैं और पैरों के पगों की चिकासदार चमडी होती है। मवाले तथा चमडी पर जन्तु आकर चोंट जाते हैं। एक ही समय मक्खी ६६०००००० जन्तुओं को लेकर उड़ सकती है।

मल, मूत्र, खात, लाद, आदि अशुचि स्थानों में मक्खी बैठती है और उसमें उत्पन्न होनेवाले छोटे जन्तुओं को ले कर उड़के चारों ओर विखेरती है–जिससे कोलेरा, ज्वर, मरकी आदि व्याधियाँ बढती हैं। इसलिये हो सके जहाँ तक किसी भी खाद्य सामग्री पर मक्खियों को नहीं बैठने देना चाहिये। जो लोग इन बातों की सावधानी नहीं रखते उन्हें व्याधियों में घिरा रहना पड़ता है।

१७८ प्रश्न—खड्ग कितने परिमाण का होता है।

उत्तर—मारवाड, मेवाड, मालव और गुजरात में यह परिमाण प्रचलित नहीं है, परन्तु बेंगलोर प्रान्त में २०० सेर का, मैसूर प्रान्त में १८० सेर का, हेगडदेवन कोट में ८० सेर का, डिमोगाडिस्ट्रिक में ६० सेर और काची में ४० सेर का खडुग माना गया है। ८० तोला का एक सेर जानना चाहिये। जैन शास्त्रानुसार ५२६ योजन ६ कला का एक खडुक होता है जो क्षेत्र-विभाग के परिमाण विशेष में व्यवहृत है।

१७९ प्रश्न—परिग्रह (धन) का प्रायश्चित्त क्या है ?।

उत्तर—राजवार्तिक भाष्य में अकलङ्क देव कहते हैं कि-
"ममेदमिति हि सकल्पे रक्षणादय सजायते। तत्र च हिंसावश्यम्भाविनी, तदर्थमनृत जल्पति, चौर्यं चाचरति, मैथुने च कर्मणि प्रयतते, तत्प्रभवाः नरकादिषु दु खप्रकारा.। इहापि अनुपरतव्यसनमहार्णवाऽवगाहनमिति। उक्त च ज्ञानार्णवकारणापि—

आरम्भो जन्तुघातश्च, कपायाश्च परिग्रहात्।
जायन्तेऽत्र ततः पात., प्राणिनाश्वभ्रमागरे ॥ १ ॥

परिग्रह होने पर उसके बढाने की प्रवृत्ति होती है, उसमें योग देते हुए हिंसा करनी पडती है, झूठ बोलना पडता है, चोरी करनी होती है, मैथुन कर्म मे चित्त देना पडता है, चित्त विक्षिप्त रहता है, क्रोधादि कपाय जाग उठते हैं, रागद्वेषादि सताते हैं, भय सदा घेरे रहता है, रौद्रध्यान बना रहता है,

आशा वढती जाती है, आरम्भ वढ जाते हैं, चिन्ताओं का ताता लग जाता है, नष्ट होने या क्षति पहुचने पर शोक-सन्ताप आ दबाते हे और निराकुलता कभी पास नहीं फटकती। परिणाम अन्त मे यह होता है कि नाना दारुण दु खमय नरक में पीडित होना पड़ता हे। वहाँ कोई रक्षक, एव शरण नजर नहीं आता। अतएव धन को सुकृत कार्यो मे देना यही उसका प्रायश्चित्त है।

१८० प्रश्न—आचार्य को गोचरी जाना या नहीं ?।

उत्तर—श्रीव्यवहारभाष्य के छट्ठे उद्देशा की टीका मे लिखा है कि—" यथोत्पन्ने ज्ञाने जिनेन्द्राश्चतुस्त्रिंशद्बुद्धातिशयाः सर्वज्ञातिशया देहसौगन्ध्यादयो येषां ते तथा भिक्षा न हिण्डते, एव तीर्थंकरदृष्टान्तेन गणी-आचार्योऽष्टगुणोपेतोऽष्टविधगणिसपदुपेतः शास्ता-तीर्थंकर इव ऋद्धिमान्न हिण्डते। आचार्यं भिक्षामटामीति व्यवसित यदि वृषभो न निवारयति तदा तस्याऽनिवारयतः प्रायश्चित चत्वारो लघुकाः, अथ वृषभेण निवारितोऽपि न तिष्ठति तर्हि वृषभः शुद्धः, आचार्यस्य प्रायश्चित्त चत्वारो गुरुकाः, तथा गीतार्थो भिक्षुश्चेन्न निवारयति तदा तस्य मासगुरु, अगीतार्थस्य भिक्षोरनिवारयतो मासलघु। आचार्यस्य गीतार्थागीतार्थाभ्या वारितस्यापि गमने प्रत्येक चतुर्गुरु इति। "

—चौंतीस अतिशय सपन्न जिनेश्वर भगवान् गोचरी नहीं जाते, उसी प्रकार आठ गणिसपदा से युक्त आचार्य भी गोचरी

न जाय। आचार्य गोचरी जाने को तैयार हों उनको यदि उपाध्याय न रोके तो उसको चतुर्लघु प्रायश्चित्त आता है। उपाध्याय के रोकने पर भी यदि आचार्य गोचरी जावें तो आचार्य को चतुर्गुरु प्रायश्चित्त आता है। आचार्य को गोचरी जाते हुए यदि गीतार्थ–मुनि न रोके तो उसको गुरुमास और उसके रोकते हुए भी आचार्य गोचरी जाय तो आचार्य को चतुर्गुरु प्रायश्चित्त आता है। गोचरी जाते आचार्य को अगीतार्थ (सामान्य) मुनि न रोके तो लघुमास और उसके रोकने पर भी यदि आचार्य गोचरी जाय तो आचार्य को चतुर्गुरु प्रायश्चित्त आता है।

इस आज्ञा से सिद्ध है कि–आचार्य को गोचरी नहीं जाना चाहिये। साधु पास में न हों, किसी सद्गृहस्थ का अधिक आग्रह हो, विशेष लाभ का कारण हो और अन्य कोई महत्व के कार्य की उपस्थिति हो तो वैसी हालत में आचार्य गोचरी जा सकते हैं।

१८१ प्रश्न—चतुर्थभक्त का अर्थ क्या है ?

उत्तर—स्थानाङ्गसूत्र की टीका में लिखा है कि–" एक पूर्वदिने द्वे उपवासदिने चतुर्थे पारणकदिने भक्त–भोजनं परिहरति यत्र तपसि तच्चतुर्थभक्तम्, तद्यस्यास्ति स चतुर्थभ एवमन्यत्रापि शब्दव्युत्पत्तिमात्रमेतत्। प्रवृत्ति चतुर्थभक्तादिशब्दानामेकाद्युपवासादिष्विति।"

—पहिले दिन एक भक्त, उपवास के दिन दो भक्त और पारणा के दिन एक भक्त एव चार भक्त का जिस तपमें त्याग किया जाय उसको चतुर्थभक्त कहते हैं। इस तपवाले को चतुर्थभक्तिक कहते हैं। इसी प्रकार षष्ठभक्त, अष्टमभक्त, दशमभक्त, आदि शब्दों की प्रवृत्ति उपवास आदि तपों में है।

१८२ प्रश्न—विजयसेठ विजयासेठानी के समान और भी कोई पुरुष स्त्री हुए हैं या नहीं ?।

उत्तर—उपदेशतरङ्गिणीकारने लिखा है कि–वसन्तपुर–निवासी शिवङ्करसेठने एक लाख स्वधर्मिभाईयों को जीमाने का अभिग्रह लिया था, उतने धन का योग न मिलने पर अभिग्रह पूर्ण न हो सका। उसने अभिग्रह की पूर्त्ति के विषय में आचार्यधर्मसूरि से पूछा। आचार्यने कहा–भृगुकच्छ (भरुच) में जिनदास और उसकी पत्नी सुहागदेवी विजय विजया के समान आदर्श दंपति रहते हैं। यथाशक्ति उनका भोजनादि वात्सल्य करने से एक लाख स्वधर्मिभाईयों की सेवा करने जितना लाभ मिलेगा। इस आख्यान से जान पडता है कि–जिनदास और सुहागदेवी ये दोनों सुशीलता में विजयसेठ और विजया-सेठानी के समान ही थे।

१८३ प्रश्न—दीक्षा के समय नाम परिवर्त्तन की प्रथा प्राचीन है कि अर्वाचीन ?।

उत्तर—उत्तराध्ययन सूत्र की पाईटीका मे कहा है कि–

" तीए वि तासिं साहुणीण समीवे गहिया दिक्खा रूपसु
व्वयानामा तवसञम कुणमाणी विहरइ । "

—प्रत्येक बुद्ध नमिराज-महर्षी की माता मदनरेखाने साध्वी के पास दीक्षा ली, उस समय उसका 'सुव्रता' नाम रक्खा । वह तप संयम को पालन करती हुई विचरने लगी। इससे सिद्ध है कि दीक्षा के समय नाम परिवर्त्तन की प्रथा प्राचीन ही है, अर्वाचीन नहीं । आज भी यही प्रथा प्राय प्रचलित है ।

१८४ प्रश्न—साधु साध्वियों को प्रथम प्रहर की लाई हुई गोचरी कितनी टाइम तक रखना ? ।

उत्तर—भगवतीसूत्र के ७ वें शतक के प्रथम उद्देशा में लिखा है कि—" जण निग्गथे वा निग्गथी वा फासुएसणिज्ज असण जाव साइम पढमाए पोरसिए पडिगाहत्ता, पच्छिम पोरिसिं उवाइणावेइत्ता आहार आहारेइ, एसण गोयमा ! कालातिक्कते पाणभोयणे । "

—गौतम ! जो साधु अथवा साध्वी प्रासुक और कल्पनीय अशन, पान, खादिम, स्वादिम रूप चार प्रकार का आहार पहली पोरिसी मे ला कर चौथे प्रहर के बाद वापरे तो वह कालातिक्रान्त पान भोजन है—वापरने योग्य नहीं है । अतएव जान पड़ता है कि प्रथम प्रहर के लाये आहारादि तीसरे प्रहर तक कल्पते हैं, चौथे प्रहर में नहीं ।

१८५ प्रश्न—श्रीदेवी परिग्रहिता है या अपरिग्रहिता ?।

उत्तर—श्रीआवश्यकसूत्र के चोथे अध्ययन की चूर्णि में कहा है कि–"तस्स कोट्ठए चेतिए पासस्सामी समोसढे, सिरि पव्वइत्ता, गोवालीए सीमिणिका दिन्ना सा पुव्व उग्गेण विहरित्ता पच्छा ओसन्ना जाता, हत्थे पादे धोवति जथा दोवती विभासा करिज्जती उट्ठेऊण अन्नत्थ गता, विभत्ताए नमही ए हिता, तस्स ठाणस्स अणालोइय पडिकता चुल्लहिमवंते पउमदहे सिरि जाता देवगणिया ।"

—वाराणसी नगरी के कोष्टक उद्यान में प्रभुपार्श्वनाथ का समवसरण हुआ। श्रीदेवीने दीक्षा ली और वह आर्या गोपालिका साध्वी को शिष्या रूप से सोंपी गई। पहले वह उग्रविहार करने लगी, पर बाद में शिथिलाचारिणी बन कर द्रौपदी (सुकुमालिका) के समान बार-बार हाथ, पैर धोने लगी। प्रवर्त्तिनी के रोकने पर वह दूसरे स्थान में चली गई। अन्त में अतिचारदोषों का प्रतिक्रमण आलोचन न करके, मर कर वह चुल्लहिमवन्त पर्वत के पद्मद्रह में देवगणिका (अपरिग्रहिता) देवी हुई। इससे श्रीदेवी का अपरिग्रहिता होना सिद्ध है और वह व्यन्तर निकाय की गणिका के समान देवी है।

१८६ प्रश्न—कितनी दूर से गोचरी लाने में इरियावहि करना पड़ती है ?।

उत्तर—धर्मबिन्दु के पञ्चमाध्याय की टीका में लिखा है कि–

" हस्तशताद्बहिर्गृहीतस्येर्यापथिकाप्रतिक्रमण गमनागमना लोचनपूर्वकं, हस्तशतमध्ये त्वेवमेव। निवेदनं गुरोरग्रे हस्तमात्रव्यापारप्रकाशनेन लब्धस्य ज्ञापन समर्पण च कार्यमिति।"

—साधु का जिस मकान या उपाश्रय में निवास हो उससे १०० हाथ बाहर से गोचरी लाई गई हो तो अवश्य इरिया वहि पडिकमना चाहिये और गृहस्थने जिस प्रकार जैसा आहार दिया हो वह गुरु को कह देना चाहिये। जो हाथ के अन्दर से आहार लाया हो तो इरियावहि किये बिना ही देनेवालेने जिस रीति से दिया हो गुरु को जना देना चाहिये। मतलब यह है कि—सो हाथ के अन्दर गोचरी लाने में इरियावहि प्रति क्रमण करने की आवश्यकता नहीं है, उपरान्त लाना पड़े तो इरियावहि अवश्य करना चाहिये।

दूसरी बात यह कि गृहस्थने जैसा जिस प्रकार आहारादि दिया हो वह गुरु को दिखलाये बिना नहीं वापरना चाहिये। यदि बिना दिखलाये वापर ले तो गुरुअदत्त लगता है जो सयम का बाधक कारण है।

१८७ प्रश्न—स्त्रियों को पूर्वाध्ययन की आज्ञा है या नहीं?।

उत्तर—जयसुन्दरसूरिकृत प्रतिक्रमणगर्भहेतु ग्रन्थ में कहा है कि-" स्त्रीणा पूर्वाध्ययनेऽनधिकारत्वान्नमोऽर्हत्सिद्धाचार्यो [illegible] , नमोऽस्तु वर्द्धमानायेत्यादीनां च पूर्वसभाव्यमानत्वान्न पठति।"

—दृष्टिवाद में अनेक विद्या और मंत्र आदि हैं, अतः अल्प-सत्वादि कारण सपन्न स्त्रियों को उनके पढने का अधिकार नहीं है। नमोऽर्हत्सिद्धा०, नमोऽस्तु वर्द्धमानाय, विशाललोचनदल और वरकनक ये चारों सूत्र पूर्वान्तर्गत होने से स्त्रियों को नहीं पढना चाहिये।

पुरुषों के समान स्त्रियों में धैर्य बल नहीं होता, वे किसी भी विशिष्ट गुण को पचा नहीं सकतीं, थोड़ा भी गुण प्राप्त करके अभिमान में एठने लगती हैं और समय आने पर विशिष्ट गुण का दुरुपयोग कर बैठती हैं। इसीलिये उनको पूर्वाध्ययन का अधिकार नहीं दिया गया। स्त्रियाँ एकादशाङ्ग-विद्या का अभ्यास कर सकती हैं।

१८८ प्रश्न—साधु पत्र लिख सकता है या नहीं ?।

उत्तर—साधुओं को अकारण पत्र लिखने और सन्देश भेजने की आज्ञा नहीं है। इसी प्रकार गृहस्थों से अधिक परिचय रखने, उनके कुशल समाचार मगाने और समय समय पर उनको सावद्य सलाह देने के लिये पत्र व्यवहार रखना सयमधर्म को बाधा पहुचानेवाला है। निशीथचूर्णि के ११ वें उद्देशा में लिखा है कि–" ज रज्ज जतुकामो तत्थ जे साहू तेसिं लेहेण सदेसगेण वा पुव्वामेव नाय करोति।"–जिस राज्य में साधु को विहार करने की इच्छा हो वहाँ जो साधु हों उनको पत्र लिख कर अथवा सन्देश भेज कर सूचना देना

कि–हम आपके यहाँ आना चाहते हैं। इससे सिद्ध है कि–प्रयोजन पड़न पर साधु साधु को पत्र लिख सकता और सन्देश भेज सकता है, अकारण नहीं। आज साधुओं का पत्र व्यवहार गृहस्थों से भी अधिक बढ़ गया है जो सर्वथा अवाञ्छनीय है।

१८९ प्रश्न—दिक्कुमारी देवियाँ किस निकाय की हैं?।

उत्तर—मलयगिरिकृत–आवश्यकसूत्रविवरण में कहा है कि–"दिक्कुमारिका नाम दिक्कुमारभवनपतिविशेषजातीया दृश्य।"–दिक्कुमारिका देवियाँ भवनपति की दिक्कुमारनिकाय की हैं। ऐसा ही जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिसूत्र के टीकाकारने लिखा है।

१९० प्रश्न—स्त्री को मन पर्यवज्ञान होता है या नहीं?।

उत्तर—प्रवचनसारोद्धार के २७० वें द्वार में लिखा है कि–अरिहन्त १, चक्रवर्ती २, वासुदेव ३, बलदेव ४, संभिन्नश्रोत ५, जघा–विद्याचारण ६, पूर्वधर ७ गणधर ८, पुलाक ९, और आहारक १० ये दस लब्धि स्त्रियों में नहीं होतीं, शेष १८ लब्धियाँ होती हैं। ऋजुमति विपुलमति ये दोनों भेद १८ लब्धियों के अन्तर्गत ही हैं। अत साध्वी–स्त्री को मन-पर्यवज्ञान होना सिद्ध है।

१९१ प्रश्न—साधु को शयन करते समय कान में रुई का फूमा डालना या नहीं?।

उत्तर—साधु साध्वियों की हरएक प्रवृत्ति अहिंसा-मूलक होती है उसमें जीवयतना का ही एक ध्येय रहता है और वही ध्येय उनके संयमधर्म और आत्मधर्म की रक्षा करता है। साधु साध्वियों की शयन क्रिया मे अचानक कोई जन्तु कान में पैठ जाय तो उस जीव का भी विनाश होता है और उनके सयम एव आत्मधर्म को बाधा पहुचती है। इसलिये श्रीमहानिशीथसूत्र के सप्तमाध्ययन में आज्ञा दी गई है कि—" अकएण कण्णविवरेसु रूप्पासरूवेण तुयट्टइ सथारम्मि। "—साधु साध्वी यदि कर्णविवर में रुई का फूमा रक्खे विना सस्तारक में शयन करें तो उनको प्रायश्चित्त लगता है। अतएव शयन करते समय साधु साध्वी को कर्ण-विवर में रुई का फूमा अवश्य रखना चाहिये।

१९२ प्रश्न—साटे के रस, काजी का जल, उष्ण जल और गुड़ आदि से मिश्रित जल का काल कितना है ?।

उत्तर—लघुप्रवचनसारोद्धार में कहा है कि—' उच्छुरसे सोवीर जाम दुग ' साटे के रस का और काजी के जल का काल दो प्रहर का होता है।

' ति चउ पण जाम, उसिण नीरस्स य। वासाइसु य तम्माण, फासुजलस्स एमेव ८६ '—उष्णजल का काल वर्षा में ३, शीतकाल मे ४ और उष्णकाल में ५ प्रहर का होता है। इसी प्रकार गुड, खाड और मिश्रीमिश्रित प्रासुक जल का भी काल समझना चाहिये।

१९३ प्रश्न—साधु को दिन में शयन करना या नहीं ?।

उत्तर—ओघनिर्युक्ति मे लिखा है कि–"अद्धाणपरिस्संतो, गिलाण वुड्ढो अणुन्नवेताण। सथारुत्तरपट्टो, अत्थरण णिवज्ज आलोअ ४१९ "–विहार करने से थके हुए, बीमार, वयोवृद्ध, साधु को आचार्य की आज्ञा से सथारा उत्तरपट्टा बिछा कर अभ्यन्तर स्थान में दिन को निद्रा लेना कल्पती है, अकारण नहीं।

साधु को सयम विकास के लिये हर समय स्वाध्याय ध्यान मे लीन रहना चाहिये। निद्रा स्वाध्याय, ध्यान और सयमगुण की विघातक है। इसीसे शास्त्रकारोंने दिन मे शयन करने की अकारण आज्ञा नहीं दी।

१९४ प्रश्न—चौथे आरक में लिपिबद्ध धर्मशास्त्र थे या नहीं ?।

उत्तर—त्रिषष्ठिशलाकापुरुषचरित्र के १० वें पर्व के तृतीय सर्ग में कहा है कि–" अेष्ठम्यां चतुर्दश्या-मुप वास्यात्तपौषध । अवाचयद्धर्मशास्त्र-पुस्तक शृण्वतोस्तयो. ३२० "–जिनदास सेठ आठम, चौदस के दिन उपवास सहित पौषध करके कम्बल, सम्बल नामक बैल जिस प्रकार सुन सकें उस तरह धर्मशास्त्र के पुस्तक वाचता था।

इससे सिद्ध होता है कि–चौथे आरक म भी लिखे हुए विद्यमान थे और श्रावक उनको पौषध या सामायिक

में वाचते थे। साधुओं में लेखन प्रथा नहीं थी, किन्तु सारा धर्मशास्त्र कण्ठाग्र रहता था और बिना पुस्तक ही उनका स्वाध्याय किया जाता था। बुद्धिमन्दता के कारण आचार्य देवर्द्धिक्षमणाश्रमण की आज्ञा से शास्त्र लिपिवद्ध करके रखने की प्रथा साधुओं में प्रचलित हुई और साधु-साध्वी भी उनको लिखने लगे।

१९५ प्रश्न—जिनालय में आचार्यादिक आ जायें तो उनका अभ्युत्थानादि स्वागत करना या नहीं?।

उत्तर—श्राद्धविधिटीका में कहा है कि—" चैत्यादौ गुर्वागमनोवसरे चाभ्युत्थानादिप्रतिपत्ति कार्या। "—जिनालय आदि में आचार्यादि के आगमन के अवसर में उनका अभ्युत्थानादि स्वागत अवश्य करना चाहिये। क्योंकि जिनमन्दिर में गुरु आदि के आने पर खड़े होने, उनको वन्दन करने में विनयधर्म का पालन होता है। आदि शब्द से धर्मशाला, उपाश्रय, वसति और चाहे जिस जगह आचार्य, उपाध्याय, *गणि, गणावच्छेदक, स्थविर और रत्नाधिक*, आदि गुरुदेवों के आने पर उनका अभ्युत्थान, वन्दन आदि विनय अवश्य करना चाहिये, न करे तो अविनय रूप आशातना लगती है।

१९६ प्रश्न—नरक में रोग कितने हैं?।

उत्तर—उपदेशरत्नाकर-ग्रन्थ में लिखा है कि—" **नवनवइसहस्साइ, पचसया तहय चुलसीइ। रोगाण कोडीओ,**

वन की वृद्धि होती है। ब्रह्मचर्य में दोष लगता और सयम से गिर कर कुलिङ्गी बन जाता है। भक्तकथा करने से गृद्धि होती है। लोगों में चर्चा होने लगती है कि—यह तो भुक्खड है। एव षड्जीवनिकाय के वध की अनुमोदना से निकाचित कर्म का बन्ध होता है। चोरकथा करने से चोर होने की आशका में घिरना पडता है और वध बन्धनादि कष्ट भुगतना पडते हैं एव राजकथा करने से सुननेवालों को विचार होता है कि यह भला आदमी नहीं है, कोई गुप्तचर है। यदि कोई राज में चुगली कर देवे तो अनेक दु खों में घिरना भी पडता है। देशकथा करने से देशगत आरम्भ समारम्भ के अनुमोदन का पाप लगता है। एक देश के प्रति राग और दूसरे देश के प्रति अरुचि पैदा होती है। स्वपक्ष और परपक्ष के इस विषय मे वादविवाद खडा हो कर झगडा होता है जिससे तन, धन की खराबी होती है। भ्रष्टाचार की कथा करने से मिथ्यात्व की वृद्धि होती या उसको सहादत मिल्ती है जिससे सत्य वस्तु-स्थिति का गला घुटता है और कुलिङ्गियों का प्रचार अधिक बढ़ता है। मृदुकारुणिकी कथा कहने से पुत्र या इष्ट वियोग से पीडित लोगों में रुदनादि दु ख होता है, शोक, सन्ताप और मोह पैदा होता है। दर्शनभेदिनी कथा से कुतीर्थियों और शिथिलाचारियों का जोर बढ़ता है, सम्यक्त्वभाव में शिथिलता आकर प्राप्त सन्मार्ग का लाभ नष्ट होता है। चारित्रभेदिनी कथा से साधुओं के प्रति लोगों की अरुचि होती है, सच्चे साधुओं

में पतित भाव का सचार होता है जिससे वे सयम धर्म से गिर पडते हैं और भव्य लोगों को सच्चे धर्म का उपदेश नहीं मिल सकता। अतएव ये विकथाएँ मनुष्यत्व और सयम की घातक होने से सब प्रकार से त्याज्य समझनी चाहिये।

१९८ प्रश्न—रत्नकम्बल का स्वभाव कैसा होता है?।

उत्तर—सूत्रकृताङ्गसूत्र के १३ वें अध्ययन की टीका में कहा है कि " उण्ह करेइ सीय, सीय उण्हत्तण पुण भवइ। कबलरयणादीण, एम सहावो मुणेयव्वो ॥ १ ॥ "—उष्णकाल में ठडक देती है और शीतकाल में गरमी। रत्नकम्बल का यही स्वभाव है। यह ज्वालामुखी पहाड़ो में पैदा होनेवाले चूहों के रोम (केश) से बनाई जाती है और नवनीत के समान अत्यन्त मुलायम होती है। इसकी धुलाई जाज्वल्यमान अग्नि में होती है, जल में नहीं।

१९९ प्रश्न—कचन कामिनी के स्पर्श करनेवालों को साधु कहना चाहिये या नहीं?

उत्तर—दशवैकालिकसूत्र के द्वितीय अध्ययन मे कहा है कि–जो वस्त्र, गध, अलङ्कार, स्त्री और शयनाऽऽसन का त्याग कर देता है वही असली साधु कहाता है। जिन्होंने धन, अग्नि, जल और अगना, आदि का त्याग नहीं किया वे साधु–त्यागी नहीं, किन्तु पापश्रमण या अनाचारी हैं। परिग्रह और विषय-भोगों के प्रलोभनों में लुब्ध साधु अपने सयम–धर्म को बरबाद

कर बैठता है। अनेक सकल्प-विकल्पों में घिरा रहता है और जिस प्रकार 'हड' नामक वनस्पति जल में झकोरे खाया करती है, उसी तरह उसकी आत्मा कभी स्थिर नहीं रहती। अजैन-शास्त्रकारोंने भी लिखा है कि—

" यस्तु प्रव्रजितो भूत्वा, पुनः सेवेत्तु मैथुनम् ।
षष्ठि वर्षसहस्राणि, विष्ठाया जायते कृमि* ॥ १ ॥"

—दीक्षा ले कर जो साधु नैसर्गिक या अनैसर्गिक मैथुन को फिर सेवन करता है वह साठ हजार वर्ष तक विष्ठा में कीट होकर जन्म मरण-जन्य दु खों से पीडित होता रहता है। गेरुए कपड़े पहन लेने, लम्बी मालायें गले में डाल लेने, तिलक, छापे और राख लगा लेने से कुछ सफलता नहीं मिलती, यह तो खाली ढोंग है। जो धन सचय करते हैं, उसके लिये लालायित रहते हैं, माल-मलीदे डटके उड़ाते हैं, पास में स्त्रियों को बैठा कर उपदेश देते और उनसे पगचपी कराते हैं। भला! ऐसे साध्वाभासों की मानसिक वृत्तियाँ कब स्थिर रह सकती हैं?, वे त्यागी नहीं, किन्तु ढोंगी या धर्मधूर्त हैं। ऐसों के लिये तुलसीदासने कहा है कि—

" तुलसी ककर जे चुन्हें, तिन्ह सतावत काम ।
सीरा पूरी खातु है, तिनकी जाने राम ॥ १ ॥"

"कोह तज्यो नवि मोह तज्यो नवि द्रोह तज्यो ममता नवि टारी।
गेह तज्यो नवि नेह तज्यो न भज्यो भगवान महा-सुखकारी॥
काम तज्यो नवि दाम तज्यो नवि राम भज्यो तृष्णा नवि छारी।
पेट के काज किने बहु साज यों मुंड मुडाय कहा झकमारी॥१॥"

स्त्री ससार विषवृक्ष का बीज है। शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गन्ध उसके पत्ते, कामक्रोधादि उसकी डालियाँ, और पुत्र, कन्या, आदि उसके फल हैं और तृष्णाजल से वह बढ़ता है। जिसने स्त्रियों से नाता जोड़ा उसने भक्ति, मुक्ति और ज्ञान इन तीनों सुखों को जलाञ्जली दे दी। इसलिये ससार में—

" सुरमन्दिरतरुमूलनिवास , शय्याभूतलमजिनवास ।
सर्वपरिग्रहभोगत्याग , कस्य सुख न करोति विराग. ?॥१॥"

—जो देवमन्दिर या वृक्षतले पड़े रहते हैं, जमीन ही जिनकी खटिया है, मृगछाला जिनका वस्त्र है, सारे विषयभोग जिन्होंने छोड़ दिये हैं और सब परिग्रह लालमा से जो रहित हैं, ऐसे सच्चे साधु किसको सुख नहीं देते ?। अर्थात्—इस प्रकार के ही त्यागी, वैरागी और नि स्पृही साधु स्वपर का कल्याण करनेवाले हैं। अतएव सिद्ध है कि—कचन और कामिनी को स्पर्श करनेवाला साधु नहीं कहाता, किन्तु असाधु या ढोंगी कहाता है।

साधु को दुनिया के सर्व सग से और राग द्वेष रूप प्रेतों के चगुल से सर्वथा अलग रहते हुए आसक्ती-भाव को छोड़

कर जनता का उपकार करने के लिये ग्रामानुग्राम विहार करते रहना चाहिये–जिससे साधुत्व मे किसी प्रकार का दोष न लग सके। कहा भी है कि—

" वहता पानी निर्मला, पड़ा गधीला होय।
त्यों साधु रमता भला, दाग न लागे कोय॥
दाग न लागे कोय, जगत से रहे अलहदा।
राग-द्वेष युग प्रेत, न चित को करे विच्छेदा॥
कह गिरधर कविराय, शीत उष्णादिक सहता।
होय न कहु आसक्त, यथा गगाजल वहता॥ १॥ "

२०० प्रश्न—'आयंविल' शब्द का अर्थ क्या है?, उसमे कितने द्रव्य वापरना चाहिये?।

उत्तर—"आचामाम्ल–आचामोऽवश्रावण, आम्ल चतुर्थो रसः, त एव प्रायेण व्यञ्जने यत्र भोजने ओदनकुल्माष-सक्तुप्रभृतिके तदाचामाम्ल समयभाषयोच्यते।"–जिस तप में कांजी का जल या उष्ण जल और भोजन में रांधे हुए ओदन, उड़द, सत्तु, आदि लिये जायें समय भाषा से उसको आयंविल (आचामाम्ल या आयामाम्ल) कहते हैं। उसके तीन भेद हैं–उत्कृष्ट, मध्यम और जघन्य।

" सोवीरमुसिणजल, कप्पइ नो अण्णमेस निहिपाय।
सोवीर सिद्धपिंड, निण्णेह अंबियमुक्किट्ठ॥ १०९॥

मज्झम्मि घुग्घुरियाइ, हिंगुपमुह कप्पए जयणा ।
भज्जिय धण्णाइय, सव्व कप्पइ जहन्नंति ॥ ११० ॥"

—उत्कृष्ट आयबिल में स्नेह–रहित अचित्त किया हुआ काजी का जल, गरम जल और भलीभाँति राधा हुआ ओदनादि अन्न लिया जाता है, प्राय इसकी यही विधि है । मध्यम आयबिल में गोधूमादि अन्न की राधी हुई शुद्ध हींग के भावेवाली घूगरी और उक्त प्रकार से दो जल लिये जाते हैं । जघन्य आयबिल में उक्त दो जल और भूजे हुए सब तरह के धान्य लिये जाते हैं । तृतीय भेद को लक्ष्य में रख कर लघुप्रवचनसारोद्धार के कर्त्ता ने लिखा है कि—

" सियसिंधव सुंठीमरी, मेही सोवचल च बिडलवण ।
हिंगु सुगंधीसुआई, पकप्पए साइम मधु ॥ ११३ ॥"

श्वेतसिन्धव, सूठ, कालीमिरच, मेथी, कालानमक, वलवण, हींग और सुगंधी सुआ, आदि आयबिल मे कल्पते हैं । हीर प्रश्नोत्तरकारने लिखा है कि–आयबिल मे सूठ, कालीमिरचें, आदि लेना कल्पती है, पर पीपर, लोंग, आदि लेना नहीं कल्पते । क्योंकि–लोंग म दूध का भाता दिया जाता है और पीपर, हरीतकी नाल से कची तोड़ कर सुखाई जाती है ऐसी परम्परा है, अतः वे अग्राह्य हैं । (अभिधानराजेन्द्र भा० २)

" गिहिणो इहविह आयंबिलस्स कप्पति दुन्निदवाइ ।
एग मम्मुचियमन्न, बीय पुण फासुअ नीर ॥ १ ॥"

—मुख्यवृत्त्या श्रावक को ओदनादि धान्य मे से चाहे कोई एक राँधा हुआ या पकाया हुआ धान्य और सोवीरक तथा उष्ण जल में से एक स्नेह-रहित अचित्त जल ये दो द्रव्य ही लेना कल्पते हैं, ऐसा सन्देहदोलावलीमन्थकार का मन्तव्य है। लघुप्रवचनसारोद्धारकार का कहना है कि—

" दुन्नि चउ अगुलपमाण नीर, जइ हवइ सिद्धभत्तुवरि।
आयबिल निसुद्ध, हविज्ज तो भवकुट्ठहर ॥ १११ ॥"

—दो या चार अगुल प्रमाण अचित्त और स्नेह-रहित जल में डूबे हुए सिद्ध-भक्त को खाने और उस जल को पी लेने से विशुद्ध (निर्दोष) और कष्टों का नाश करनेवाला आयबिल होता है। कहने का मतलब यह है कि-एक द्रव्य और एक जल वह भी जल में डूबा हुआ वापर लेने से शुद्ध आयबिल कहा गया है, शास्त्रकारोंने आयबिल तप की यही उत्कृष्ट विधि प्रतिपादन की है। साधुओं को इस तप में जीराराब और ओदन लेना कल्पते हैं, पर श्रावक को नहीं कल्पते, केवल सिद्ध ओदन लेने मे हरकत नहीं है। प्रमाण-पाठ भी है कि-
' जगराजीरजुत्त, ओयणमिह कप्पइ जईण पुणो। सड्ढाण नो कप्पइत्ति। (लघुप्रवचन०, गाथा ११२)

मध्यम और जघन्य आयबिल आपवादिक है, उसका विधान अशक्त लोगों के लिये किया गया है। जो साधु, साध्वी सलग्न योगोद्वहन और श्रावक, श्राविका सलग्न उपधान वहन

क्रिया एव वर्द्धमानओली तप करनेवाले हैं । उनमें आयबिल करते करते जिनका शरीर कृश हो गया है, निरस अन्न खा नहीं सकते–जिसके कारण उनके चालु तप में बाधा पड़ने की सभावना है । ऐसे लोगों के लिये ही शास्त्रकारोंने मध्यम और जघन्य आयबिल करने की आज्ञा दी है, दूसरों के लिये नहीं।

रस–लोलुपता को कम करने के लिये आयबिल तप किया जाता है, उसमें यदि रसयुत पचासों तरह की चीजें यथारुचि वापरी जाऍं, तो न शास्त्र आज्ञाओं का पालन होता है और न आयबिलतप की उद्देश्य–पूर्त्ति होती है । वर्त्तमान काल में रस लोलुपी लोगोंने इस तप में पचासों प्रकार की चीजें वापरने की जो प्रथा चलाई है वह शास्त्रोक्त नहीं, किन्तु कल्पित और अवाछनीय है ।

२०१ प्रश्न—कौन किसको छोड़ देता है ? ।

उत्तर—जो सदाचार से पतित हैं, जो कुसगी, परवचक, व्यभिचारी, द्रोही, विघ्नसन्तोषी, असत्यवादी और अकारण लोगों को दु ख देनेवाले हैं, ससार में उनका कहीं आदर नहीं होता और न कोइ उन्हें अपनाता है । नीतिकारोंने कहा है कि—

" राजा धर्मविना द्विज॰ शुचिविना ज्ञान विना योगिन ,
कान्ता सत्यविना हयो गतिविना भूषा च ज्योतिर्विना ।
योद्धा शूरविना तपो व्रतविना छन्दो विना गीयते,
भ्राता स्नेहविना नरो निश्चविना मुञ्चन्ति शीघ्र बुधा ॥१॥"

—धर्म-हीन राजा को, अपवित्र ब्राह्मण को, ज्ञान-हीन योगी को, सत्य रहित स्त्री को, गति-हीन घोडे को, चमक-हीन आभूषण को, बल-हीन योद्धा को, नियम-रहित तप को, छन्द-हीन कविता को, नेह-हीन भाई को और प्रभुभक्ति-हीन पुरुष को बुद्धिमान लोग शीघ्र छोड़ देते हैं।

" वृक्ष क्षीणफल त्यजन्ति विहगा शुष्कमरः सारसाः,
पुष्प पर्युषित त्यजन्ति मधुपा दग्ध वनान्त मृगाः।
निर्द्रव्य पुरुष त्यजन्ति गणिका भ्रष्टश्रिय मन्त्रिणः,
सर्वः सारवशाज्जनोऽभिरमते कस्यास्ति को वल्लभः ॥१॥ "

—फलहीन वृक्ष को पक्षी, सूखे हुए तालाब को सारस, रसहीन पुष्प को भौंरे, जले हुए वन को हिरन, धनहीन पुरुष को वेश्या, श्रीहीन राजा को मन्त्री जिस प्रकार छोड़ देते हैं उसी प्रकार गुणहीन मनुष्य को लोग छोड़ देते हैं। ससार में गुण के वश से एक दूसरे को अपनाया जाता है, नहीं तो कौन किसका प्रिय है ?।

ता० ५ । ८ । ४२ मु० खिमेल (मारवाड़)

प्रश्नकार-सौभाग्यमल कोठारी, मु० लश्कर (ग्वालियर)

२०२ प्रश्न—क्या साध्वी को पुरुषों की सभा में कल्प-सूत्र वाचने का अधिकार है ?।

उत्तर—केवल पुरुषों की सभा में साध्वी को कल्पसूत्र या व्याख्यान वाचने का अधिकार नहीं है, किन्तु स्त्रियों

की मुख्यता में वह वाच सकती है। देश काल के अनुसार पुरुष भी यदि अदब से बैठ कर साध्वी के व्याख्यान में कल्प सूत्र या व्याख्यान सुन लें तो कोई दोषापत्ति नहीं है, ऐसी वृद्ध–परम्परा है।

२०३ प्रश्न—आचार्यादि की विद्यमानता में साध्वी को व्याख्यान देने का क्या अधिकार है ?।

उत्तर—स्वगच्छीय आचार्यादि की मौजूदगी में साध्वी को व्याख्यान नहीं वाचना चाहिये। भिन्नगच्छीय आचार्य आदि की विद्यमानता में देश काल को लक्ष्य में रख कर व्याख्यान वाचना या न वाचना, यह साध्वी की इच्छा पर निर्भर है।

२०४ प्रश्न—साध्वी को मूल कल्पसूत्र वाचना या नहीं ?।

उत्तर—सूत्रों में साध्वी को एकादशाङ्ग विद्या पढ़ने की आज्ञा है। मूल कल्पसूत्र दशाश्रुतस्कन्ध सूत्र का आठवा अध्ययन है। पर्युषणपर्व में लोगों को धर्ममर्यादा में प्रवर्तने के लिये गच्छाचार्य की आज्ञा से कल्पसूत्र के वाचने में साध्वी को किसी तरह की हरकत नहीं है। अपनी अपनी गच्छ–प्रथा की बात अलग है।

२०५ प्रश्न—साधु साध्वी को मरणभोजन, सात आठ मास की गर्भिणी के निमित्त बना भोजन और विवाह आदि का भोजन लेने का क्या अधिकार है ?।

उत्तर—बारह दिन हो जाने बाद का मरणभोजन हो, जहाँ यदि जीमनेवालों की पंक्ति बैठी न हो और उस घरवाले का गोचरी के लिये अति आग्रह हो तो साधु साध्वी अपनी मर्यादा से लेने योग्य आहारादि ले सकते है, इससे विपरीत दशा में लेना अनुचित है। अगर मरणभोज लेने में लोकापवाद की सम्भावना हो तो वहाँ गोचरी नहीं जाना चाहिये। गर्भिणी के निमित्त बना भोजन लेने से यदि गर्भिणी को किसी तरह की बाधा न हो और उसकी भी देने की भावना हो एव लोकापवाद का कोई कारण न हो तो वह भोजन साधु साध्वी अपनी मर्यादा से ले सकते है, गर्भिणी के हाथ से नहीं ले सकते। ता २१। ९। ४२ मु० खिमेल (मारवाड)

प्रश्नकार—एच् एस् पोरवाड जैन, मु० कुकशी (नेमाड़)

२०६ प्रश्न—आर्य किसको कहते हैं ?, आर्यदेश कितने हैं ?।

उत्तर—' भाषाशब्दकोश ' मे आर्य शब्द के श्रेष्ठ, पूज्य, मान्य, उत्तम, सेव्य और श्रेष्ठकुलोत्पन्न, आदि अर्थ किये गये है। अतएव शिष्टमान्य सद्गुणों का धारक मनुष्य ' आर्य ' कहाता है। अथवा हेय धर्मों से अलग रह कर जो सदाचार में प्रवृत्त हो वह आर्य कहलाता है। प्रज्ञापनोपाङ्ग-सूत्र की मलयगिरिवृत्ति के लेखानुसार ' यत्र तीर्थङ्करादीना-

मुत्पत्तिस्तदार्यं शेषमनार्यमिति '–जिस क्षेत्र में तीर्थङ्कर, आदि शब्द से चारणश्रमण, चक्रवर्ती, वासुदेव, बलदेव, प्रतिवासुदेव, और विद्याधर, आदि महान् पुरुषों की उत्पत्ति होती हो और शुद्ध देव–गुरु–धर्म सामग्री के देशक एवं साधक आचार्य, उपाध्याय, साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका का योग मिलता रहे उसको 'आर्यक्षेत्र' या 'आर्यदेश' कहते हैं। तात्पर्य यह है कि–जहाँ आराध्यतम तीर्थंकर आदि पुरुषों का जन्म हो, आत्म तारक धर्म–सामग्री की सुलभता हो और धर्म के प्रचारक आचार्यादि एवं उसके साधक भव्य जीवों का योग हो वो आर्य–क्षेत्र या आर्यदेश है, शेष को अनार्य–क्षेत्र या अनार्य–देश समझना चाहिये। आर्यदेश की अपेक्षा को लक्ष्य में रख कर प्रज्ञापनोपाङ्गसूत्र के प्रथमपद की वृत्ति में मलयगिरि आचार्यने लिखा है कि—

१ मगधेषु जनपदेषु राजगृहं नगरम्। २ अङ्गेषु चम्पा। ३ वङ्गेषु तामलिप्ती। ४ कलिङ्गेषु काञ्चनपुरम्। ५ काशिषु वाराणसी। ६ कोशलासु साकेतम्। ७ कुरुषु गजपुरम्। ८ कुशार्त्तेषु सौरिकं। ९ पाञ्चालेषु काम्पिल्यम्। १० जङ्गलेषु अहिच्छत्रा। ११ सुराष्ट्रेषु द्वारावती। १२ विदेहेषु मिथिला। १३ वत्सेषु कौशाम्बी। १४ शाण्डिल्येषु नन्दिपुरम्। १५ मलयेषु भद्दिलपुरम्। १६ वत्सेषु वैराटपुरम्। १७ वरणेषु अच्छापुरी। १८ दशार्णेषु मृत्तिकावती। १९ चेदिषु शौक्तिकावती। २० सिन्धुसौवीरेषु वीतभयम्।

२१ मथुरा शूरसेनेषु । २२ पापा भङ्गेषु । २३ मासा पुरिवर्त्तायाम् । २४ कुणालेषु श्रावस्ती । २५ लाटासु कोटिवर्षम् । श्वेताम्बिकानगरी केकयजनपरार्द्धे । एतावदर्धपड्विंशतिसंख्येषु जनपदात्मक क्षेत्रमार्यं भणितम् ।

हस्त-लिखित प्राचीन पत्रों में उपरोक्त पाठ में दिये गये नामों में नाम-भेद उपलब्ध होते हैं जो मतान्तर स्वरूप जानना चाहिये । नीचे जो तालिका लिखी जाती है उससे सूत्रवृत्ति का मतलब समझ में आ जायगा ।

देश नाम	मुख्यनगरी	परिवारभूत गाँव[1]
१ मगध	राजगृह	६२ लाख
२ अङ्ग	चम्पा	५ लाख
३ वङ्ग	तामलिप्ती	५० हजार
४ कलिङ्ग	काञ्चनपुर	१ लाख
५ काशी	वाराणसी	१ लाख, ९२ हजार
६ कोशल	साकेतपुर	९९ हजार
७ कुरु	गजपुर	८० हजार, ३२५
८ कुशावर्त्त	सोरीपुर	१४ हजार, ८३
९ पाञ्चाल	काम्पिल्यपुर	३ लाख, ८३ हजार
१० जङ्गल	अहिच्छत्रा	१ लाख, ४५ हजार

१ श्री धनचन्द्रसूरि-ज्ञानभंडार-मडवारिया के बिंडल नं० १७ के हस्त लिखित एक प्राचीन पत्र से उद्धृत जो संवत १८६४ का लिखा हुआ है।

देश नाम	मुख्यनगरी	परिवारभूत गाँव
११ सुराष्ट्र	द्वारावती	६८ लाख, ५ हजार
१२ विदेह	मिथिला	८ हजार, १००
१३ वत्स	कौशाम्बी	२८ हजार
१४ शाण्डिल्य	नन्दिपुर	१० हजार
१५ मलय	भद्दिलपुर	७ लाख
१६ वत्स (मत्स्य)	वैराटपुर	८० हजार
१७ वरण	अच्छापुरी	४२ हजार
१८ दशार्ण	मृत्तिकावती	२४ हजार
१९ चेदी	शौक्तिकावती	२४ हजार
२० सिन्धुसौवीर	वीतभयपत्तन	६८ हजार, ५०
२१ शूरसेन	मथुरानगरी	६ हजार, ८००
२२ भङ्ग	पावापुर	३६ हजार
२३ पुरिवर्त्ता	मासपुर	१ हजार, ४२५
२४ कुणाल	श्रावस्ती	६३ हजार, ५३
२५ लाट	कोटिवर्षपुर	२१ लाख, ३ हजार
२६ कैकयी–अर्द्ध	श्वेताम्बिका	२ लाख, ५६०, ८००

जम्बूद्वीप के दक्षिण–भरतक्षेत्र के मध्यखड मे उपरोक्त साढे पचीस देश आर्य हैं और शेष सब अनार्य हैं। भरतक्षेत्र–गत चक्रवर्ती के अधिकार मे ३२ हजार देश और ९९ कोड़ गाँव होते हैं। एक घर में २८ पुरुष और ३२ स्त्रियाँ, एव ६० पुरुष–स्त्री का एक कुल होता है। ऐसे दश हजार कुल

जिसमें आबाद हों वह गाँव और इससे दुगुने कुल आबाद हों वह शहर चक्रवर्त्ती के राज्य में माना जाता है।

२०७ प्रश्न—कौन किसको नहीं चाहता ?।

उत्तर—सूर्य को घुग्घु, सिद्धान्त को मिथ्यात्वी, हाथी को कुत्ता, पण्डित को मूर्ख, उत्तम भोजन को भड़ूरा, सज्जन को पापी, धर्मशिक्षा को लम्पटी (भोगार्थी) और बजारे को चोर नहीं चाहता। इसीका समर्थक एक सवैया भी है कि—

दीठ उलूक न चाहत सूरज, तिम मिथ्यात्वी सिद्धान्त न ध्यावे,
कूकर कुंजर देखि भसे पुनि, ज्यु जड़ पण्डित से घुररावे।
सूकर जैसे भली गली नावत, पापी त्यों साधु के संग न आवे,
चाहत लम्पट ना ग्रमसीख कु, चोर को चादनो नाहि सुहावे ॥१॥

२०८—श्रावक को कैसे गाँव में बसना चाहिये ?।

उत्तर—धर्मेच्छु व्यक्ति को जहाँ धर्म और व्यवहार की साधना में किसी प्रकार की बाधा न आती हो और मानवी गुणों का विकास होता हो। सदा अच्छी सोबत मिलती हो और सभी जातियाँ एक दूसरे के सुख दुःख मे साथ देनेवाली हों वहीं निवास करना चाहिये। कहा भी है कि—

पाखण्डी पारदारिक नटनिर्दयशत्रुधूर्त्तपिशुनानाम्।
चौरादीना च गृहाभ्यर्णे, न वसन्ति सुश्राद्धाः ॥ १ ॥

—गाँव या नगर अनेक गुणसंपन्न होने पर भी यदि उसमें पाखंडी, परस्त्रीगामी, नट, निर्दयी, दुश्मन, धूर्त्त, गुण्डे,

चुगलखोर और चोर, आदि अधिक बसते हों तो भले मनुष्यों को वहाँ नहीं बसना चाहिये । क्योंकि-ऐसे लोगों में निवास करने से मनुष्यता का सर्व-विनाश होता है और अन्त में अनन्त भव-भ्रमण करना पड़ता है । इसलिये धर्मशास्त्र कहते हैं कि—

न चैत्यसाधर्मिकसाधुयोगो, यत्रास्ति तद्ग्रामपुरादिकेषु ।
युतान्यपि प्राज्यगुणैः परैश्च, कदापि न श्राद्धजना वसन्ति ॥१॥

बहुगुण आइण्णे वि हु, नयरे गाम य तत्थ न वसेइ ।
जत्थ न विज्जइ चेइय, साहम्मियसाहुसामग्गी ॥ २ ॥

—जिस नगर या गाँव में जिनालय न हो, स्वधर्मी बन्धुओं का या मुनिराजों का योग न हो, वहाँ व्यवसाय (धनोपार्जन) के अनेकगुण होने पर भी श्रावकों को कभी नहीं रहना चाहिये । इसलिये उभयलोक में शाता पहुँचानेवाली सामग्री वाले नगरादि में श्रावक को वास करना चाहिये-जिससे आत्मा का अधःपात न हो ।

२०९ प्रश्न—आओ, जाओ, बैठो, इत्यादि सन्मान जनक वाक्य गृहस्थ के लिये साधु बोले या नहीं ? ।

उत्तर—जिन वाक्यों के बोलने से साधुधर्म कलंकित हो, सावद्य की सराहना हो और तत्सम्बन्धी रागद्दृष्टि का प्रादुर्भाव हो वैसे वाक्य साधुओं को कभी नहीं बोलना चाहिये, क्योंकि-ऐसे वाक्य या व्यवहार संयम-धर्म के घातक हैं । श्रीदशवैकालिकसूत्र में साफ लिखा है कि—

तहव सजय धीरो, आम एहि करेहि वा ।
सय चिट्ठ चयाहित्ति, नेव भासिज्ज पन्नव ॥ ॥४७॥

न पडिन्निज्जा सयणामणाइ, सिज्ज निसिज्जं तह भत्तपाण ।
गामे कुले वा नयरे व देसे, ममत्तभाव न कहिं वि कुज्जा ॥ ८ ॥

गिहिणो वेयावडिय न कुज्जा, अभिवायण वदण पूअण वा ।
असकिलिट्ठेहिं मम वसिज्जा, मुणिचरित्तस्स जओ न हाणी ॥ ९ ॥

—सयम (चारित्र-धर्म) को पालन करने में वीर और प्रज्ञावान् साधु गृहस्थ को बैठो, आओ, यह काम करो, सो जाओ, खड़े रहो और अमुक ठिकाने जाओ, इस प्रकार नहीं बोले (अध्ययन ७ वा) शयन, आसन, शय्या, स्वाध्यायभूमि, अन्न-पानी, गॉव, कुल, नगर और देश, इन पर मुनि को कभी ममत्व भाव नहीं रखना चाहिये। साधु गृहस्थों की किसी प्रकार की कामकाज रूप सेवा न करे, वाणी और काया से गृहस्थों का सन्मान, वन्दन न करे, और उनके साथ निवास भी न करे । क्योंकि-ऐसा व्यवहार रखने से सयमधर्म का सर्वनाश होकर दुर्गतिपाव होता है। अत साधु को गृहस्थों के परिचय से सदा अलग रह कर क्लेश-रहित परिणामवाले साधुओं के साथ रहना चाहिये (विविक्तचर्या नामक द्वितीय चूलिका) ।

२१० प्रश्न—किस प्रकार की स्थापना लाभदायक और हानि कर है ? ।

उत्तर—लालवर्ण और श्याम रेखावाली (नीलकंठ सम)

आवर्त्तवाली सुख-भङ्गकर, तीन आवर्त्तवाली सत्कारवर्द्धक, चार आवर्त्तवाली रग (आनन्द)नाशक, पाच आवर्त्तवाली भय-हर, छ आवर्त्तवाली रोगकारक, सात आवर्त्तवाली सुख-कारक और सर्वरोग टालक, विषम आवर्त्तवाली श्रेष्ठ सुखफलदायक और सम आवर्त्तवाली शुभफल और धर्म की नाशक, एव दक्षिण आवर्त्तवाली स्थापना जिस वस्तु मे रक्खी जाय उसको अक्षय्य-कर समझना चाहिये । इसी विषय की बोधक श्रीयशोविजयोपाध्याय कृत सज्झाय है जो एक हस्त-लिखित पत्र से यहाँ उद्धृत कर दी जाती है ।

पूरव नवमाथी उद्धरी, जिम भाखे भद्रवाहू रे ।
स्थापनाकल्प अमे कह्यु, तिम साभलजो सहु साहू रे ॥ १ ॥

परमगुरु वयणे मन दीजिये, तो सुरतरु फल लीजे रे ॥ टेर ॥
लाल वरण जे थापना माहे, रेखा श्याम ते जोय रे ।
आयु ज्ञान वहु सुख दिये, ते तो नीलकठ सम होय रे ॥प०॥२॥

पीतवरण जे थापना माहीं, दीसे विन्दु ते श्वेत रे ।
तेह पखाली पाइये, सवि रोग विलयनो हेत रे ॥प०॥३॥

श्वेतवरण जे थापना माहीं, पीतविन्दु तस शीर रे ।
नयनरोग छाटे टले, पीता टले शूल शरीर रे ॥प०॥४॥

नीलवरण जे थापना माहें, पीतविन्दु ते सार रे ।
तेह पखाली पाइये, होय अहिविषनो उतार रे ॥प०॥५॥

टाले विसूचिका रोग जे, घृतलाभ दीसे घृतवन्न रे ।
रक्तवर्ण पासे रह्या, मोहे मानवी केरा मन्न रे ॥प०॥६॥

शुद्ध-श्वेत जे थापना माहीं, दीसे राती रेख रे ।
इसथकी विष उतरे, वलि सीझे कार्य अशेष रे ॥प०॥७॥

अर्द्ध-रक्त जे थापना, वलि अर्द्ध-पीत परिपुष्ट रे ।
तेह पखाली छांटीये, अक्षिरोगने दुष्ट रे ॥प०॥८॥

जम्बूवर्ण जे थापना माहें, सर्व वर्णना बिन्दु रे ।
सर्व-सिद्धि तेहथी हुये, मोहे नर-नारी वृन्द रे ॥प०॥९॥

जातिपुष्प सम थापना, सुतवश वधारे तेह रे ।
मोरपींछ सम थापना, वाछित दिये न सन्देह रे । ॥प०॥१०॥

सिद्धि करे भय अपहरे, पारद सम बिन्दु ते श्याम रे ।
मसक सम जे थापना, ते टाले अहिविष ठाम रे ॥प०॥११॥

एक आवर्त्त सुख दिये, बिहु आवर्त्ते भग रे ।
त्रिहु आवर्त्ते मान दिये, चिहु आवर्त्ते नहि रग रे ॥प०॥१२॥

पाच आवर्त्ते भय हरे, छ आवर्त्ते दिये रोग रे ।
सात आवर्त्ते सुख करे, वलि टाले सघला रोग रे ॥प०॥१३॥

विषम आवर्त्ते सुखफळ भलु, सम आवर्त्ते फलहीन रे ।
धर्मनाश होय तेहथी, एम भाखे तत्त्वप्रवीन रे ॥प०॥१४॥

जेह वस्तुमा थापीये, दक्षिण आवर्त्ते तेह रे ।
तेह अखूट सघलु हुवे, कहे वाचक यश गुणगेह रे ॥प०॥१५॥

इति स्थापनाकल्प-सज्झाय, लि० प० कनकचन्द्रेण ।

२११ प्रश्न—सात्विक, राजसी और तामसी दान किसको कहते हैं ?।

उत्तर—सुपात्र का योग मिलने पर हर्षाश्रु-नेत्र हो बहुमान, प्रियवचन, विकसित-रोमाञ्च और अनुमोदना पूर्वक जो दान दिया जाय और वह अनादर, विलम्ब, विमुखता, अप्रिय-वचन एव पश्चात्ताप आदि दोषों से रहित हो, उसको ' सात्विकदान ' कहते हैं। उपकार का वदला चुकाने के लिये, या ऐहिक माने हुए सुख के साधनभूत स्त्री, पुत्र आदि को जो दान दिया जाय उसको ' राजसी दान ' और विना भाव से, कजूसाई से, न देने की इच्छा होने पर भी किसी के लिहाज से जो दिया जाय, अथवा कोई काम सिद्ध करने के प्रलोभन से, लोकनिन्दा से, व्यवहार मे खामी पड़ने के भय से, तिरस्कार से, वलवान के डर से, राजादि अधिकारियों के कहने से और अभिमान से जो दान दिया जाय उसको ' तामसी ' दान कहते हैं।

२१२ प्रश्न—दो जटा और एक नेत्रवाले श्रीफल से क्या लाभ होता है ?।

उत्तर—' नालिकेरैकाक्षिकल्प ' में लिखा है कि-द्विजटी और एकाक्षिवाले श्रीफल की गुरुप्रदर्शित मत्राक्षर विधान से घर में पूजा करने से सर्व कामनाएँ सिद्ध होती हैं, लक्ष्मी स्थिर रहती है, घर मे कभी उपद्रव नहीं होता और सदा शान्ति वनी रहती है। शाकिनी, भूत, पिशाच, आदि दुष्ट देव-देवी के

दोषों का नाश होता है और वे सहायकारी बनते हैं। दुकान पर बाजोट के ऊपर स्थापन कर पूजने से व्यापार में अधिक लाभ मिलता है, उसके पखाल–जल को पीने से वन्ध्या के पुत्र होता है और गूढ गर्भा के प्रसूति होती है। कहाँ तक लिखा जाय कि—

यस्यैकनेत्रो द्विजटी सुपक्व, मन्नारिकेर. कृतिनस्तु गेहे।
चिन्तामणिप्रस्तरतुल्यभाव, मन्यता धन्यतम स्वचित्ते ॥ १ ॥
द्विजटी एकनेत्रस्तु, नालिकेरो महीतले।
चिन्तामणिसम प्रोक्त, सर्ववाञ्छार्थदायक ॥ २ ॥

—एक नेत्र और दो जटावाला सुपक श्रीफल ससार में साक्षात् चिन्तामणि–रत्न के समान समस्त कामनाओं का देने वाला और श्रेष्ठ–तम समझना चाहिये, अपने चित्त मे इस बात को भलीभाँति मानो–मनन करते रहो।

मु० खिमेल (मारवाड़) स० १९९९ कार्त्तिकवदि १०

रिमेल्नगरे चातु–र्मास्य वाहुलमामके।
इन्दुनन्दग्रहग्राह, नर्षे पक्षे सित तथा ॥ १ ॥
पञ्चमीतिथिके घस्रे, गुरुणां कृपया मया।
यतीन्द्रसूरिणा सोऽय, नीतो ग्रन्थो हि पूर्णताम् ॥ २ ॥
मतिमान्द्याद्धि शास्त्रस्य, विरुद्ध यद्यलेखि यत्।
सज्जना शोधयित्वा तत्, सार गृह्णन्तु हसवत् ॥ ३ ॥
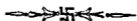
प्रश्नों का अकारादि अनुक्रम ।

प्रश्न-नम्बर प्रश्न

१० स्वप्नदोष-जन्य अशुचि को साफ किये बिना सामायिक हो सकती है या नहीं ?।

१६१ स्वप्न और पालणा की बोली की रकम किस खाते ली जा सकती है ?।

७९ सिद्धसेन दिवाकरने सूत्रों को संस्कृत में करना चाहा उनको कठिन दण्ड क्यों दिया गया ?, आज कई ग्रन्थ संस्कृत में नजर आते हैं सो क्या कारण ?।

१९० स्त्री को मन पर्यव ज्ञान होता है या नहीं ?।

१८७ स्त्रियों को पूर्वाध्ययन की आज्ञा है या नहीं ?।

६५ स्तुति और स्तव किसको कहते हैं ?।

१३७ सूर्योदय से पहले दश प्रतिलेखना कौनसी की जाती हैं ?।

११८ सेवग जाति कब किस तरह हुई है ?।

४५ सोडा, लेमीनेट या दूध वक मिश्रित मशीन का बना हुआ बर्फ भक्ष्य है या अभक्ष्य ?।

१५५ हाथीदांत का चूड़ा पहनना अच्छा है या नहीं ?।

अशुद्धि-शुद्धिपत्रकम् ।

अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पक्ति
किया है	किया हैं	९	७
दिन	दिन के	८	३
ेनदि	देवादि	३१	१
जाते है	जाते हैं	३५	१७
जयसेना	-जयसेन	३७	१४
समामेण	समामेण च	५२	१८
अठाए	अट्ठाए	८७	१५
पष्टरूप	स्पष्टरूप से	१२७	३
केसी	किस	१४०	१९
अवधि	अवधि	१४५	४
१३० में	में १३०	२०६	२१
तोद्यवसे	नाद्यवसरे	२२१	

अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ
उस विषय	विषय	२२३
जनपरार्द्धे	जनपदार्द्धे	२३५
९९ क्रोड	९६ क्रोड़	२३६

---

१ छन्नवइगामकोडिसामी, ' अजितशान्तिस्तव गाथा
छ नु कोड़ गाम के स्वामी ' भरतचक्रीसज्झाय